श्रीरामकृष्ण-विवेकानंद भावधारा की एकमात्र हिंदी मासिकी

वर्ष–११ सितम्बर-१९९२ अंक ९

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१ ३०१ (बिहार)

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्रीमती कमला घोष —इलाहाबाद
१२. श्री एस. डी. शर्मा —अहमदाबाद
९३. श्रीमती प्रभा भार्गव—बीकानेर (राजस्थान)
९४. श्री शशिकांत मिश्र—नारायणपुर (मध्य प्रदेश)
९५. श्री के० सी० सर्राफ—बम्बई
९६. श्री ए० के० चटर्जी, आइ. ए. एस.—पटना
९७ सचिव, थियोसोफिकल लॉज—छपरा (बिहार)
९८. श्री सुभाष वासुदेव—लुमडिंग (आसाम)
९९. श्री दिलीप देसाई, बरोदा (गुजरात)
१००. श्रीरामकृष्ण आश्रम—इन्दौर (म० प्र०)
१०१. सारदापीठ विद्यालय – इन्दौर (म० प्र०)
१०२. डॉ० ओमप्रकाश वर्मा—रायपुर (म० प्र०)
१०३. विवेकानन्द विद्यापीठ—भोपाल (म० प्र०)
१०४. रामकृष्ण मठ—जामतारा (बिहार)
१०५. श्री सुनील खण्डेलवाल—रायपुर (मध्य प्रदेश)
१०६. श्री बसन्त लाल गुप्ता—नागपुर (महाराष्ट्र)
१०७. श्री जयेश ब्रह्मभट्ट—पुणे (महाराष्ट्र)
१०८. श्री नरेन्द्र कुमार टाक—अजमेर (राजस्थान)
१०९. श्री महन्त युक्तिरामजी—जोधपुर (राजस्थान)
११०. श्री राय मनेन्द्र प्रसाद जमशेदपुर (बिहार)
१११. कुमारी उषा हेगड़े—पुणे (महाराष्ट्र)
११२. श्री विनय प्रकाश—पुणे (महाराष्ट्र)
११३. डॉ० बी० सी० सिन्हा— रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११४. डॉ० एच० पी० सिंह—रीवाँ (मध्य प्रदेश)
११५. मानस समिति, लुमडिंग (आसाम)
११६. श्रीरामचन्द्र गुप्त, लुमडिंग (आसाम)
११७. श्री चन्द्रकान्त स० नागपुरे (नागपुर)
११८ श्री अच्छे लाल श्रीवास्तव (उ० प्र०)
११९. संत जगदम्बिका (प्रयाग)
१२०. श्री अजय बलदवा, जयपुर (आसाम)
१२१. श्री बी० एस० दुबे, पुणे (महाराष्ट्र)
१२२. श्री बालीराम शर्मा, लुमडिंग (आसाम)
१२३. श्रीमती चन्द्रिका कालरा (बम्बई)
१२४ श्रीरामकृष्ण आश्रम, श्रीनगर (कश्मीर)
१२५. श्रीमती छवि सिंह, गाजीपुर (उ० प्र०)
१२६. विवेकानन्द युवा महामंडल, इन्दौर (म० प्र०)
१२७. श्री आनन्द यश चोपड़ा, अलॉग (अरुणाचल प्रदेश)

इस अंक में

		पृष्ठ
१. श्री रामकृष्ण ने कहा है		१
२. श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन		२
३. व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द	३
४. श्रीरामकृष्ण की अंत्यलीला	स्वामी प्रभानन्द	६
५. सद्गुरु स्वयं उपस्थित होते हैं	स्वामी शशांकानन्द	१२
६. कीर्तन का प्रभाव	श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा	१९
७ अन्याय के विरुद्ध हैं स्वामी विवेकानन्द	पुरुषोत्तम अग्रवाल	२३
८. विवेक चूड़ामणि	स्वामी वेदान्तानन्द	२८
९- सत्कर्म की जीत (लघु कथा)	डॉ० सुरेन्द्र नाथ दीक्षित	२९
१०. महाप्रस्थान (कहानी)	स्वामी विवेकानन्द	३१

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत
उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—११ | १९९२—सितम्बर | अंक—९

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक :
डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय
रामकृष्ण निलयम्
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(बिहार)
फोन : ०६१५२-२६३९

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य—	५०० रु०
वार्षिक—	३० रु०
रजिस्टर्ड डाक से—	४५ रु०
एक प्रति—	४ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

संस्कारों का प्रभाव कितना जबरदस्त होता है। एक जगह कुछ संन्यासी बैठकर ध्यान कर रहे थे, इतने में एक स्त्री वहाँ से गुजरा। सभी पूर्ववत् ईश्वर चिन्तन करते रहे, परन्तु उनमें से एक ने झट एक बार तिरछी नजर से उसकी ओर देख ही लिया। यह व्यक्ति तीन बच्चों का बाप बनने के बाद साधु हुआ था।

(२)

कूपमण्डूक की तरह न बनो। कुएँ में रहनेवाले मेढ़क को कुएँ से बड़ा या अच्छा कुछ भी दिखाई नहीं देता। इसी तरह जो कट्टर होते हैं उन्हें अपने मत से बढ़कर कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता।

(३)

किसी का पेट अगर भरा भी हो और उपर से उसे अजीर्ण का रोग हो तो भी अचार या इमली देखते ही उसके मुँह में पानी भर आता है। इसी प्रकार, मनुष्य यदि स्वभाव से सज्जन हो और उसके मन में लोभ बिल्कुल न रहे, तो भी धन-दौलत या प्रलोभन की वस्तुएँ देखते ही उसका मन चंचल हो उठता है।

(४)

जिस प्रकार पिचकारी की छड़ पिचकारी में अछूती रहती है, उसी प्रकार ईश्वर भी देह में निर्लिप्त होकर रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण के प्रिय भजन

भाव काली का समझ न आवे

मूल बंगला भजन

(राग—रामप्रसादी : ताल—दादरा)

भाव कि भेबे पराण गेलो।
जार नामे हरे काल,
पदे महाकाल,
तार केनो कालो रूप होलो ॥ध्रु॥

कालो रूप अनेक आछे,
ए बड़ो आश्चर्य कालो।
जारे हृदि माझारे राखने परे
हृद्पद्म करे आलो ॥१॥

रूपे काली, नामे काली,
कालो होते अधिक कालो।
ओ रूप जे देखेछे, से भजेछे,
अन्य रूप लागेना भालो ॥२॥

'प्रसाद' बोले कुतूहले—
एमन मेये कोथा छिलो।
ना देखे नाम शुने काने
मन गिये ताय लिप्त होलो ॥३॥

(—श्री रामप्रसाद)

भावानुवाद

(राग—झिंझोटी : ताल—कहरवा)

भाव कालि का समझ न आवे।
सोच सोच प्राण निकल जावे ॥
जिसका नाम काल हर लेवे
महाकाल जिसका पद सेवे।
रूप उसी का काला क्यों हो
इस रहस्य को कौन बतावे ? ॥ध्रु॥

काले रूप अनेकों हैं पर
यह काला आश्चर्य दिखावे।
हृदय बीच रखने पर इसको
हृत्कमल में उजेला छावे ॥१

काली नाम, रूप भी काला,
काले को भी हार मनावे।
जिसने देखा, मुग्ध बन गया,
अन्य रूप फिर उसे न भावे ॥२

'प्रसाद' कहता कौतूहल से,
ऐसी नारी कहाँ रहावे ?।
बिन देखे, नाम मात्र सुनके,
चित्त लिप्त जिसमें हो जावे ॥३

(—सारदातनय)

व्यावहारिक जीवन में वेदान्त

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द
उपाध्यक्ष, रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन

स्वामी विवेकानन्द का सारा संदेश वेदान्त पर आधारित है। दस खण्डों में उपलब्ध सम्पूर्ण विवेकानन्द साहित्य में न केवल वेदान्त की बातें लिखी हैं, वरन् स्वामीजी ने यह भी बताया है कि हम अपने व्यावहारिक जीवन में उन्हें किस प्रकार अमल में ला सकते हैं।

किन्तु वेदान्त है क्या ? हम सदियों से वेदान्त की बातें सुनते आ रहे हैं। लेकिन आम लोगों की पकड़ में वे बातें नहीं आतीं। धारणा यह बनी है कि ऐसा विषय जो कोई समझ नहीं पाए, वेदान्त है। स्वामी विवेकानन्द के समय यही भ्रान्ति फैली थी। दिल्ली में एक धार्मिक सभा का आयोजन था। एक संन्यासी रोज वेदान्त पर पाण्डित्यपूर्ण प्रवचन देते। ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, ऐसी-ऐसी गूढ़ बातें वे बताते। उनका प्रवचन सुनने महिलाएँ भी आतीं। एक दिन किसी ने एक वृद्ध महिला से पूछा—"माताजी, क्या सुना आपने ? महात्माजी ने क्या बातें बतायी ?" महिला बोलीं, "महात्माजी ने वेदान्त की बड़ी-बड़ी बातें कहीं।' सज्जन ने पूछा—'वेदान्त की क्या बातें कहीं ?" महिला बोली' 'हम तो महिलाएँ हैं क्या समझेंगी ?' मतलब यह कि जो हम नहीं समझते वही वेदान्त है।

स्वामी विवेकानन्द जिस समय आये उस समय ऐसी ही हालत थी इस देश की। यही थी आम धारणा कि जो समझ में नहीं आए वही वेदान्त है। स्वामीजी ने इस स्थिति को परखा था। उन्होंने वेदान्त के विचारों को सुन्दर रूप से हमारे सामने रखा और बताया कि उसे हम अपने दैनन्दिन जीवन में कैसे उतार सकते हैं जिससे यह भारत, जिसे पाँच हजार साल तक जो महिमा प्राप्त थी, उससे भी अधिक गरिमा प्राप्त कर सके। हमारे पीछे पाँच हजार साल का इतिहास है और आधुनिक समय में कुछ ऐसी बातें हैं जो नये रूप में हमारे सामने आयी हैं व हमें ऊपर उठाने के लिए अवसर प्रदान करती हैं—आधुनिक विज्ञान, आधुनिक लोकतांत्रिक नीतियाँ और हमारा दर्शन। इन सभी को मिलाकर स्वामी विवेकानन्द ने एक दृष्टि दी है, एक जीवन-दर्शन दिया है, जिन्हें अपनाने से किंचित शक्ति आयेगी, निर्भयता उपलब्ध होगी, अभेद दृष्टि आयेगी—'हम सभी एक हैं।' तब भेदभाव कम हो जायेगा। और यह होगा विवेकानन्द साहित्य के मनन से जो वेदान्त की बातों को व्यवहार में उतारने का संदेश देता है।

उपनिषदों में मनुष्य की महिमा का वर्णन है और यह बताया गया है कि उस महानता को प्राप्त करने के लिए हम किस प्रकार जीवन यापन करें। उपनिषदों ने कहा कि सारी शक्ति मनुष्य के अन्दर निहित है और यह बताया कि अपने अन्दर छिपी आत्मशक्ति को हम किस प्रकार जगा सकते हैं। उपनिषदों में यह महान भाव हर वक्त गूँजा है—'निर्भयता-निर्भयता,' आत्मशक्ति-आत्मशक्ति,' 'आत्मश्रद्धा-आत्मश्रद्धा'। और यही तो आज हमें चाहिए। सौ साल पहले इन महान भावों को हमने भुला दिया था। न निर्भयता थी

और न आत्मश्रद्धा। जब स्वामीजी आये उस समय हम अंग्रेजों के अधीन आत्मशक्ति और आत्मश्रद्धा खोकर बिलकुल निष्प्राण बने थे।

स्वामीजी वेदों, उपनिषदों में वर्णित मनुष्य की महानता से परिचित थे। उन्होंने जाना था कि प्राचीन काल के भारतीय ऋषियों ने ब्रह्मत्व प्राप्त किया था। लेकिन उनके मन में यह सवाल बार-बार कौंधने लगा कि यह तो प्राचीन भारत की तस्वीर है, आधुनिक भारत कैसा है? ऐसा प्रश्न उनके पहले किसी भी उपदेशक ने नहीं किया था। आज भारतीय कैसे रहते हैं? इस पिपासा से उन्होंने भारत भ्रमण किया परिव्राजक के रूप में और देखा कि कोटि-कोटि भारतवासी जानवर की तरह जीवन यापन कर रहे हैं और उच्च कुल के लोग महलों में ऐश-आराम करते हुए उनका तनिक भी ख्याल नहीं करते। जो ऊँचे कुल के थे उनमें केवल स्वार्थपरता थी और कुछ नहीं। यह देख स्वामीजी खूब रोये। कन्या कुमारी में एक शिला पर ध्यान करने बैठे। ध्यान का विषय क्या था? और कुछ नहीं बस यही प्रश्न कि ऐसा क्यों हुआ? मनुष्यता का गौरव, कोटि-कोटि पददलितों को कैसे मिले यही था ध्यान का विषय। जिन्हें इतना दबा कर रखा गया है उन्हें किस प्रकार उठा सकते हैं, यही सोचते। अतएव स्वामीजी के लिए मनुष्य ही था ध्यान का विषय। मनुष्य से अलग कोई ईश्वर नहीं। वेदान्त कहता है कि सबके अन्दर परमात्मा हैं। लेकिन यह तो केवल किताब की बातें हैं। व्यावहारिक जीवन में तो हम एक दूसरे में शैतान को ही देखते हैं, एक-दूसरे से घोर नफरत करते हैं। ऐसा विरोधाभास किसी देश में नहीं, यह स्वामीजी ने देखा था। हमें मानव महिमा का गान करनेवाले अपने ग्रन्थों पर अभिमान है, पर व्यवहार में हम छुआछूत जैसी अमानवीय भावना से ग्रस्त हैं। स्वामीजी ने देखा कि वेदान्त जो इतना उच्च भाव सिखाता है, को लेकर नया भारत गढ़ा जा सकता है, बशर्ते कि उन्हें व्यवहार में उतारा जाय।

कुछ लोग महलों में ऐश करते हैं और कुछ लोग भूखों मरते हैं। ऐसा क्यों है? हमारी मनोभावना में कहीं न कहीं जरूर कोई खोट है। वेदान्त कहता है कि सभी में एक ही ब्रह्म विद्यमान है फिर मानव-मानव में इतना भेद क्यों? इसलिए कि हमने वेदान्त की बातों को जीवन में नहीं उतारा। अतीत से भी अधिक समुन्नत और समुज्वल भारत का स्वप्न देखने वाले स्वामी विवेकानन्द ने इसे बड़ी गहराई से समझा था और इसलिए वेदान्त की दृष्टि को व्यावहारिक जीवन में अपनाने का बार-बार आह्वान किया।

पर इस विडम्बना का कारण क्या है? इसका कारण है हमारे मन पर देह का निरंकुश शासन। मानव मन की दैहिक निरंकुशता ही सारे अनर्थों की जड़ है। हम अपनी देह को ही सब कुछ समझकर झगड़ते हैं, हिंसा में लिप्त होते हैं, पापाचार करते हैं, केवल अपना भला चाहते हैं, दूसरों के दुःख-दर्द की परवाह नहीं करते। वर्तमान समय में यह दैहिक निरंकुशता, अपनी देह को ही सब कुछ मान बैठने का भाव, जबरदस्त रूप से विद्यमान है।

आसमान में कहीं पर जगत से परे बैठा ईश्वर उपनिषद् का ईश्वर नहीं है। उपनिषद् तो ईश्वर को एक मात्र सत्ता के रूप में चित्रित करता है जो समस्त ब्रह्माण्ड और हर व्यक्ति के अन्दर विराजमान है। यह बोध युगों तक हमारे पास रहा है और महान संतों ने इस महान सत्य का अनुभव किया है कि मनुष्य तत्वतः दिव्य है, कि सभी व्यक्तियों का वास्तविक स्वरूप दिव्यता है। लेकिन यह ऋषियों-सन्तों तक ही सीमित रहा। लाखों करोड़ों लोगों के मन पर तो देह का ही निरंकुश शासन है।

पर स्वामी विवेकानन्द ने कहा—आध्यात्मिकता पर केवल जंगल में रहने वाले संन्यासियों-सन्तों और योगियों का ही विशेषाधिकार नहीं है। यह तो प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। प्रकृति ने हमें आध्यात्मिक सत्य उपलब्ध करने की क्षमता दी है। जरूरत केवल इस बात की है कि हम अपने आप पर विश्वास करें, आत्मशक्ति जाग्रत करें, इसका उपयोग करें और इस प्रकार दत्तचित्त जीवन व्यतीत करें कि आध्यात्मिक रूप से विकसित होते चले जायें।

स्वामी विवेकानन्द ने आह्वान किया—हमारी जो महान विरासत है उपनिषद्, वेदान्त उसे पढ़ो। उसे समझने की कोशिश करो जहाँ मनुष्यत्व की बात कही गयी है। उन्होंने कहा कि ऐसी किताब पढ़ो कि आत्मा की शक्ति बढ़ जाय और हृदय विशाल हो जाय। स्वामीजी के शब्दों में शंकराचार्य का मस्तिष्क और बुद्ध का हृदय—दोनों का हमारे अन्दर विकास होना चाहिए। केवल एक से नहीं होगा। गीता उपनिषदों का निचोड़ है। सभी उपनिषदें गाय हैं। बछड़ा हैं अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण गोपाल हैं। सुधी भक्तों को ताकत मिले इसलिए भगवान श्रीकृष्ण ने यह दूध हमारे सामने रखा है। लेकिन हमने किया क्या? उसे सिर से लगाये रखा। सब कुछ किया पर उसे पीया नहीं। स्वामी विवेकानन्द ने इस दूध को पीने का आह्वान किया। उन्होंने कहा उपनिषद्, गीता पढ़ो और उससे जो दृढ़-संकल्प जगेगा, शक्ति मिलेगी उसे व्यवहार में उतारने की कोशिश करो।

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार धर्म मानने की चीज नहीं बल्कि अनुभव का विषय है। सन्तों, ऋषियों ने जो कुछ कहा है, उसकी जाँच करें, उसे अनुभव करें और अपने सारे क्रिया-कलापों में प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों का समान रूप से अनुपालन करते हुए आत्मा की दिव्यता को प्रकट करें।

लेकिन प्रवृत्ति और निवृत्ति है क्या? प्रवृत्ति का मतलब है कुशल कर्म और निवृत्ति का तात्पर्य है ध्यान, चिन्तन, मनन आध्यात्मिक साधना। धन सम्पत्ति, प्रभुत्व, नामयश के लिए, अपने मधुर अहं के लिए कौशल पूर्वक काम करना, खाना-पीना, अच्छा रहना यह सब प्रवृत्ति से होता है, ध्यान से नहीं होता। मन्दिर में आरती करने से फसल नहीं होगी। इसके लिए तो काम करना होगा—वैज्ञानिक तरीके अपना कर, कौशलपूर्वक क्रियाशील होकर। सो काम करो, एक-दूसरे को सहयोग देते हुए काम करो, अकेले-अकेले नहीं। जब काम हो गया तो थोड़ा समय निकालकर ध्यान करो, मनन करो, पूजा करो, अच्छी किताबें पढ़ो। यही निवृत्ति है। जब अपने मधुर अहं के लिए कर्म पूरा हो गया तब निवृत्ति का उदय होता है और तभी नैतिकता और धर्म का आरम्भ होता है। स्वामीजी के शब्दों में "निवृत्ति ही सारी नैतिकता एवं सारे धर्म की नींव है और इसकी पूर्णता ही सम्पूर्ण 'आत्मत्याग' है जिसके प्राप्त हो जाने पर मनुष्य दूसरों के लिए अपना शरीर, मन, यहाँ तक कि अपना सर्वस्व निछावर कर देता है। सत्कार्यों का यही सर्वोच्च फल है। किसी मनुष्य ने चाहे एक भी दर्शनशास्त्र की पुस्तक न पढ़ी हो, किसी प्रकार के ईश्वर में विश्वास न किया हो और न करता हो, चाहे उसने अपने जीवन भर में एक बार भी प्रार्थना न की हो, परन्तु केवल सत्कार्यों की शक्ति द्वारा उस अवस्था में पहुँच गया है जहाँ वह दूसरों के लिए अपना जीवन और सबकुछ उत्सर्ग करने को तैयार रहता है, तो हमें समझना चाहिए कि वह उसी लक्ष्य को पहुँच गया है जहाँ भक्त अपनी उपासना द्वारा तथा दार्शनिक अपने ज्ञान द्वारा पहुँचता है।" (विवेकानन्द साहित्य, खण्ड-३, पृष्ठ ६०-६१)

ऐसी गीता स्वामीजी ने हमारे सामने रखी।

कोटि-कोटि जन में मनुष्यत्व का गौरव जगाने के लिए, एक नये भारत के, अतीत से भी अधिक उज्वल भारत के अभ्युदय के लिए कर्म करते जाओ और ऊपर उठते जाओ, यही है स्वामी विवेकानन्द का व्यावहारिक वेदान्त। "उठो जागो और रुको नहीं जबतक कि मंजिल न पा लो।" उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।" स्वामीजी के व्यावहारिक वेदान्त का यही उद्घोष है और इसी से सच्चा धर्म उपलब्ध होता है।

(१७ अप्रैल १९९२ को रामकृष्ण मिशन आश्रम, राँची के तत्वावधान में "व्यावहारिक जीवन में वेदान्त एवं स्वामी विवेकानन्द" विषय पर आयोजित व्याख्यान का सारांश)

श्रीरामकृष्ण की अन्त्य लीला

—स्वामी प्रभानन्द
सहायक सचिव, रामकृष्ण मठ एवं मिशन
अनुवादिका—डा० नन्दिता भार्गव

(१७)

आज शरद पूर्णिमा है, शुक्रवार, २३ अक्टूबर १८८५। दिन के दस बजे का समय होगा। मास्टर श्रीरामकृष्ण के पैरों में मोजा पहना रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—"मफलर को काटकर पैरों में न पहन लिया जाये। वह खूब गरम है।"

मास्टर—हँस रहे हैं।

ग्यारह बजे के लगभग श्रीरामकृष्ण का संवाद लेकर मास्टर महाशय डाक्टर सरकार के यहाँ गये। हाल सुनकर डाक्टर साहब उन्हीं के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे और उनका हाल सुनने के के लिए उत्सुकता प्रकट करने लगे। डाक्टर साहब ज्ञान योग में विश्वास करते हैं। उसी पर जोर देते हैं। मास्टर महाशय ने उन्हें श्रीरामकृष्ण के विचारों के विषय में समझाया। मास्टर महाशय "वे ज्ञान और भक्ति दोनों लेते हैं - निराकार और साकार। वे कहते हैं, भक्ति की शीतलता से जल का कुछ अंश बर्फ बना, फिर ज्ञान-सूर्य के उगने पर वह बर्फ गल गयी, अर्थात् भक्ति योग से साकार और ज्ञान योग से निराकार।"

दोपहर का समय है। डाक्टर सरकार मास्टर महाशय को साथ लेकर गाड़ी पर बैठे। डाक्टर साहब ने मास्टर महाशय को हेदुए के चौराहे पर उतार दिया। वहाँ से वे श्यामपुकुर चले आये। ठाकुर के कमरे में प्रवेश कर उन्होंने देखा कि ठाकुर भावावेश में हैं। कुछ देर बाद भाव का उपशम हुआ।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर महाशय से एकान्त में) —"अब तक भावावस्था में क्या देख रहा था, जानते हो?—सिउड़ के रास्ते में तीन चार कोस का एक मैदान है वहाँ मैं अकेला हूँ। बड़ के नीचे मैंने जो १५-१६ साल के लड़के की तरह एक परमहँस देखा था, फिर ठीक उसी तरह देखा। चारों ओर आनन्द का कुहरा सा छाया था—उसी के भीतर से १३-१४ साल का एक लड़का निकला, केवल उसका मुँह दीख पड़ता था। पूर्ण की तरह का था। हम दोनों ही दिगम्बर।—फिर आनन्द

पूर्वक मैदान में दोनों ही दौड़ने और खेलने लगे। दौड़ने से पूर्ण को प्यास लगी। एक पात्र में उसने पानी लिया, पानी पीकर मुझे देने के लिये आया। मैंने कहा, "भाई तेरा जूठा पानी तो मैं न पी सकूँगा। तब वह हँसते हुये गिलास धोकर मेरे लिए पानी लेकर आया।" यह बात बताते-बताते श्रीरामकृष्ण समाधि मग्न हो गये !

शाम हो गयी है। कुछ देर बाद डाक्टर सरकार आये। कमरे में लाटू, शशी, शरद, छोटे नरेन्द्र, पल्टू, भूपति, गिरीश आदि बहुत से भक्त बैठें हुए हैं।

डाक्टर सरकार (श्रीरामकृष्ण को)—"कल रात तीन बजे तुम्हारे लिए मुझे बड़ी चिन्ता हुई थी। पानी बरसने लगा, तब मैंने सोचा, "परमात्मा जाने, तुम्हारे कमरे के दरवाजे-खिड़कियाँ खुली हैं या बन्द कर दी गयी हैं।"

डाक्टर साहब का स्नेह देखकर श्रीरामकृष्ण प्रसन्न हुए। कहा—"कहते क्या हो ! जब तक देह है, तब तक उसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है। परन्तु देख रहा हूँ। यह एक अलग बात है। कामिनी और कांचन से प्यार अगर बिल्कुल दूर हो जाय तो ठीक-ठीक समझ में आ जाता है कि देह अलग है और आत्मा अलग है। नारियल का सब पानी जब सूख जाता है तब खोपड़ा अलग और गोला अलग हो जाता है। तब नारियल को हिलाने से ही यह समझ में आ जाता है कि भीतर गोला खोपड़े से छूटकर खड़खड़ा रहा है जैसे म्यान और तलवार। म्यान अलग है और तलवार अलग।"

कुछ देर और बातचीत चलती रही। उसके बाद रामतारण ने कुछ गाने गाये। जब उसने गाया—तेरा धर्म और कर्म तो चला गया परन्तु मेरी श्यामा पूजा शायद पूरी नहीं हुई तो इस गीत को सुनकर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट हो गये। भक्तों में बहुतों को भावावेश हो गया। छोटे नरेन ध्यान मग्न हो काठ के पुतले की तरह बैठे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण (छोटे नरेन को दिखाकर डाक्टर सरकार से)—"यह बहुत ही शुद्ध है। इसमें विषय-बुद्धि छू भी नहीं गयी।"

बातों ही बातों में श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर सरकार से कहा, "यह ठीक है। परन्तु बात यह है कि विषय-बुद्धि से वे बहुत दूर हैं, नहीं तो वे मुट्ठी में हैं। (डाक्टर सरकार और डाक्टर दो कौड़ी से) कामिनी और कांचन का त्याग आप लोगों के लिए नहीं है। आप लोग मन ही मन त्याग करोगे। ...त्याग संन्यासी के लिए है। उसके लिए स्त्रियों का चित्र भी देखना निषिद्ध है। स्त्री उसके लिए विष की तरह है। ...रुपया भी संन्यासी के लिए विषवत है। ...कामिनी कांचन ईश्वर को भुला देते हैं।

तुम्हें यह समझना चाहिए कि रुपये से दाल-रोटी मिलती है, पहनने के लिए वस्त्र मिलता है, रहने की जगह मिलती है, श्री ठाकुर जी की सेवा होती है—और साधुओं तथा भक्तों की सेवा होती है।

धन-संचय की चेष्टा मिथ्या है। मधुमक्खी बड़े कष्ट से छत्ता तैयार करती है, और कोई दूसरा आकर उसे तोड़ ले जाता है"

श्रीरामकृष्ण संतप्रसंगों को यहां समाप्त करते हैं। तरुण भक्तों में से जो लोग भावाविष्ट हुए थे डाक्टर सरकार उन्हें देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। पलटू, छोटे नरेन, भूपति, शरद, शशि आदि लड़कों को एक-एक करके मास्टर महाशय ने डाक्टर सरकार के साथ परिचय करवा दिया।

डाक्टर सरकार लगभग तीन घंटें तक रहें। अब वे जायेंगे। इसी बीच गिरीश ने डाक्टर साहब से पूछा, 'अच्छा महाशय, आपको ऐसा कभी होता है कि यहाँ आने की इच्छा न होते हुए भी मानो

कोई शक्ति खींचकर यहां ले आती हो ? मुझे तो ऐसा होता है और इसलिए आपसे भी पूछ रहा हूँ।

डाक्टर सरकार "पता नहीं, परन्तु हृदय की बात हृदय ही जानता है (श्रीरामकृष्ण से) और बात यह है कि यह सब कहने में लाभ ही क्या है ?"

(१) श्रीरामकृष्ण वचनामृत तृतीय भाग, परिच्छेद १९ पृ० ३४६-३६० उद्धृत

(१८)

शनिवार २४ अक्टूबर १८८५ ईस्वी है। डाक्टर सरकार, नरेन्द्र, महिमाचरण, मास्टर महाशय आदि श्रीरामकृष्ण के कमरे में बैठे हैं। बातचीत के दौरान श्रीरामकृष्ण ने डाक्टर सरकार से पूछा, "अच्छा, भाव के नशे में भंग जैसा नशा चढ़ता है, यह क्या है ?"

डाक्टर सरकार, (मास्टर से)—"स्नायुओं के केन्द्र हैं, उनकी क्रिया बन्द हो जाती है, इसलिए सब जड़ हो जाता है—इधर पैर लड़खड़ाते रहते हैं। सब शक्ति मस्तिष्क की ओर जाती है। इसी स्नायविक क्रिया से जीवन है। गरदन के पास मेडूला आब्लांगेटा (Medulla Oblongata) है, इसकी क्षति होने पर जीवन का दीपक बुझा हुआ जानो। ...तुलनात्मक जीव शरीर (Anatony) से कितना उपकार हुआ है, सुनो।

"....इसी तरह तुलनात्मक धर्म से भी बड़ा उपकार होता है। ये (श्रीरामकृष्ण) जो कुछ करते है, हृदय पर उसका असर अधिक होता है। सब धर्म इनके देखे हुये हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, वैष्णव, शक्ति सब धर्मों को इन्होंने स्वयं साधना करके देखा है। मधुमक्खी जब अनेक फूलों से मधु-संचय करती है तभी उसके छत्ते में अच्छा मधु तैयार होता है।"

महिमाचरण—(श्रीरामकृष्ण से) — "आपकी बीमारी में डाक्टर क्या करेंगे ? जब मैंने सुना, आप बीमार हैं, तब सोचा, डाक्टरों का आप अहंकार बढ़ा रहे हैं।"

श्रीरामकृष्ण, "ये बड़े अच्छे डाक्टर है, और बहुत बड़े विद्वान भी है।"

महिमाचरण, "जी हां, वे जहाज हैं और हम सब डोंगे हैं।" विनय पूर्वक डाक्टर हाथ जोड़ रहे हैं।

कुछ देर बातचीत होती रही। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र से गाने के लिए कहा ? नरेन्द्र ने एक के बाद एक छै गाने गाये। गाना सुनकर डाक्टर सरकार मुग्ध हो गये। कुछ देर बाद डाक्टर ने श्रीरामकृष्ण से आज्ञा ली और विदा हो गये।

संन्ध्या के बाद चन्द्रोदय हुआ है। श्रीरामकृष्ण खड़े हुए समाधिमग्न हैं। नित्यगोपाल भी उनके पास भक्ति भाव से खड़े हैं। अपूर्व दिव्य भाव चारों ओर फैल गया। भाव उतरने पर श्रीरामकृष्ण एक भक्त को जप की बातें बतला रहे हैं—"जप करने का अर्थ है निर्जन में चुपचाप उनका नाम लेना। एकाग्र होकर उनका नाम-जप करते रहने से उनके रूप के भी दर्शन होते हैं और उनसे साक्षात्कार भी होता है। जंजीर से बंधी लकड़ी गंगा में जैसे डुबायी हुई हो और जंजीर का दूसरा छोर तट पर बंधा हुआ हो। जंजीर की एक कड़ी पकड़कर कुछ दूर बढ़कर, फिर पानी में डुबकी मारकर उसी प्रकार और आगे बढ़ते हुए लोग लकड़ी को अवश्य छू सकते हैं। इसी तरह जप करते हुए मग्न हो जाने पर धीरे-धीरे ईश्वर के दर्शन होते हैं।"

कालीपद—(सहास्य, भक्तों से)—"हमारे ये अच्छे ठाकुर हैं। जप ध्यान तपस्या कुछ नहीं करना पड़ता।"

इसी समय श्रीरामकृष्ण ने एकाएक कहा—"यहाँ (गले में) न जाने कैसा हो रहा है।" श्रीरामकृष्ण के गले में दर्द हो रहा है। देवेन्द्र ने कहा, "हम इस तरह की बातों में नहीं आने वाले" देवेन्द्र का भाव यह है कि श्रीरामकृष्ण ने लोगों को धोखे में डालने के लिए रोग का आश्रय लिया है।

भक्त गण विदा हो गये। रात में कुछ बालक-भक्त बारी-बारी से जागकर श्रीरामकृष्ण की सेवा करेंगे। आज रात को मास्टर महाशय भी यहीं रहेंगे।[1]

(१) श्रीरामकृष्ण वचनामृत, भाग तीसरा, पृष्ठ २० वाँ परिच्छेद भाग (१) पृष्ठ संख्या ३६१-३६६ से लिया गया है।

(१९)

आज रविवार है, कार्तिक, कृष्ण द्वितीया, २५ अक्टूबर, १८८५ डाक्टर सरकार को श्रीरामकृष्ण देव की अवस्था की खबर देने के लिए रोज मास्टर महाशय जाया करते हैं। सुबह सात बजे के बाद मास्टर महाशय डाक्टर सरकार से मिले। डाक्टर के वृद्ध शिक्षक तथा दो-एक मित्र वहाँ उपस्थित थे। डाक्टर सरकार ने वृद्ध शिक्षक से कहा, महाशय, रात तीन बजे से मुझे परमहंस की चिन्ता है, नींद नहीं आयी, अब भी परमहंस की चिन्ता है (सब हँसते हैं) डाक्टर सरकार के मित्र डाक्टर सरकार से कह रहे हैं, "महाशय, मैंने सुना है, कोई कोई उन्हें अवतार कहते हैं। आप तो रोज देखते हैं, आपको क्या जान पड़ता है?" डाक्टर साहब ने कहा, "मनुष्य की दृष्टि से उनकी मैं अत्यन्त भक्ति करता हूँ।"

महिमा चक्रवर्ती की बात चली। महिमा चक्रवर्ती के प्रति कटाक्ष कर डाक्टर साहब ने कहा कि मानो वह तमोगुणी ईश्वर हो।

डाक्टर सरकार को आने के लिए कहकर मास्टर महाशय लौटे। भोजन आदि करके दिन के तीन बजे वे श्रीरामकृष्ण से मिले और डाक्टर साहब की कुल कथा कह सुनायी। श्रीरामकृष्ण (सहास्य)—"देखो तुम जानते हो वह अंग्रेजी पढ़ा-लिखा है, उससे यह नहीं कहा जा सकता है कि तुम मेरी चिन्ता करो। परन्तु अच्छा है, वह आप ही कर रहा है।"

कुछ देर बाद श्रीयुत विजयकृष्ण गोस्वामी श्रीरामकृष्ण देव के दर्शन के लिए आये साथ कई ब्राह्म भक्त भी हैं। इधर पश्चिम में बहुत से तीर्थों का भ्रमण करके अभी थोड़े दिन हुए कलकत्ते आये हैं। नरेन्द्र, महिमाचरण चक्रवर्ती, नवगोपाल, भूपति, लाटू, मास्टर, छोटे नरेन्द्र आदि बहुत से भक्त उपस्थित हैं। महिमा चक्रवर्ती ने विजयकृष्ण से उनके भ्रमण के बारे में पूछा। इस पर विजय-कृष्ण ने कहा, "क्या कहूँ? मैं अनुभव कर रहा हूँ कि जहाँ अभी मैं बैठा हुआ हूँ, यहीं सब कुछ हैं। इधर-उधर भटकना व्यर्थ है। और जहाँ-जहाँ मैं गया, कहीं इनका (श्रीरामकृष्ण का) एक आना, कहीं दो आने या चार आने अंश ही पाया, परन्तु पूरे सोलह आने तो केवल यहीं पा रहा हूँ।

महिमाचरण, "आप ठीक कहते हैं। फिर ये ही चक्कर लगवाते हैं और ये ही बैठाते हैं।" श्रीरामकृष्ण (नरेन्द्र से)—"देख, विजय की कैसी अवस्था हो गयी है! लक्षण सब बदल गये हैं, मानो उबाला हुआ है। मैं परमहंस की गरदन और कपाल देखकर बतला सकता हूँ कि वह परमहंस है या नहीं।"

और कुछ देर बातचीत के बाद विजयकृष्ण हाथ जोड़कर श्रीरामकृष्ण से कहते हैं, "आप कौन हैं यह मैं समझ गया, अब कहना न होगा।

श्रीरामकृष्ण (भावस्थ)—"अगर ऐसा है तो यही सही।"

विजयकृष्ण ने कहा, "मैं समझा" यह कहकर श्रीरामकृष्ण के पैर पर गिर पड़े और उनके चरणों को अपनी छाती से लगा लिया। श्रीरामकृष्ण ईश्वरावेश में बाह्यशून्य हो चित्रवत् बैठे हुए हैं। मानो भावका सैलाब आ गया। इस प्रेमावेश को इस अद्भुत दृश्य को देखकर भक्तों में किसी की आँखों से आंसू बह रहे हैं और कोई स्तुति-पाठ कर रहे हैं। महिमाचरण गाने लगे। गाते हुए आँखों में पानी भर आया। भूपति ने एक के बाद

एक दो गाने गाये। नवगोपाल रोने लगे। थोड़ी देर बाद श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हुए।

श्रीरामकृष्ण (मास्टर से)—"आवेश में न जाने क्या हो जाता है! इस समय लज्जा आ रही है। उस समय जैसे भूत सवार हो जाता है, मैं फिर "मैं" नहीं रह जाता।"

"इस अवस्था के बाद गिनती नहीं गिनी जा सकती। गिनने लगा तो १, ७ इस तरह की गणना होती है।"

नरेन्द्र, "सब एक ही है इसलिये।"

श्रीरामकृष्ण, "नहीं, एक और दो से परे।"

बातचीत चलती रही। श्रीरामकृष्ण की बातों से कमरे का परिवेश माधुर्यमय हो उठा। श्रीरामकृष्ण, 'ईश्वर आदमी की देह धारण करके आते हैं। यह सच है कि वे सब जगहों में और सर्व भूतों में है, परन्तु अवतार के बिना जीवों की आकांक्षा की पूर्ति नहीं होती, उनकी आवश्यकतायें नहीं मिटतीं। वह इस तरह कि गौ को चाहे जहाँ छुओ वह गौ को ही छूना हुआ, सींग छूने पर भी गौ को छूना हुआ, परन्तु दूध गौ के थनों से ही आता है। (हास्य)"

"श्रीरामकृष्ण के श्यामपुकुर में रहते समय महिमाचरण दो तीन बार उन्हें देखने आये थे। उस समय श्रीरामकृष्ण देव के साथ कुशल प्रश्न आदि के बाद वे अन्य लोगों के लिए निर्दिष्ट कमरे में आकर बैठते थे और एकतारा बजाकर मंत्र-साधन करने तथा उसी के बीच-बीच धर्मालाप करने में प्रवृत्त रहते थे, उनका गैरिक वस्त्रधारी सुन्दर स्थूल शरीर देखकर तथा उनके वाग्जाल से मुग्ध होकर अनेक लोग उनसे विविध आध्यात्मिक प्रश्न किया करते थे। श्रीरामकृष्णदेव भी कभी-कभी उनसे कहते "तुम पण्डित हो, (उपस्थित लोगों को दिखाकर) इन्हें कुछ उपदेश दो।" क्योंकि वे अच्छी तरह जानते थे कि महिमा को बहुत से शिष्यों को संग्रह कर, धर्मोपदेश रूप से अपना नाम जाहिर करना अभीष्ट है।

श्यामपुकुर में आकर महिमा बाबू इसी प्रकार की अनेक बातें करने लगे और अन्य सभी साधनों को हीन बताकर यह प्रतिपादित करने लगे कि उन्हीं के द्वारा अवलम्बित साधन मार्ग श्रेष्ठ तथा सहज है। ... नरेन्द्रनाथ को यह सहन नहीं हुआ। वे विपरीत युक्ति तर्क उठाकर महिमाबाबू की बात को युक्ति विरुद्ध प्रमाणित करते रहे। कहना न होगा, नरेन्द्रनाथ के तर्क के कारण महिमाबाबू का प्रचार कार्य श्यामपुकुर के मकान में अच्छी तरह सफल नहीं हो सका।

ये सब बातें हो रही थी कि श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए डाक्टर सरकार आ पहुँचे। डाक्टर साहब ने श्रीरामकृष्ण की अवस्था की विस्तृत खबर ली। डाक्टरी कार्य की बातचीत होने लगी। श्रीरामकृष्ण, "हाँ डाक्टरी में निःस्वार्थ भाव से अगर दूसरे का उपकार किया जाये, तब तो बहुत अच्छा है।"

चाहे जो काम आदमी करे, संसारी मनुष्य के लिए बीच बीच में साधु संग की बड़ी आवश्यकता है। ईश्वर में भक्ति रहने पर लोग साधु संग आप खोज लेते हैं। मैं उपमा दिया करता हूँ—गंजेड़ी, गंजेड़ी के साथ ही रहता है। दूसरे आदमी को देखता है तो वह सिर झुकाकर चला जाता है या छिप जाता है, परन्तु एक दूसरे गंजेड़ी को देखकर उसे प्रसन्नता होती है। कभी तो मारे प्रेम के दोनों गले लग जाते हैं।" (उपस्थित सब हँसते हैं)।

डाक्टर सरकार गाना सुनना चाह रहे हैं। श्रीरामकृष्ण ने नरेन्द्र को गाने के लिए कहा। नरेन्द्र गा रहे हैं। गाना—हे दीनों की शरण। तुम्हारा नाम बड़ा सुन्दर है। नरेन्द्र ने फिर एक गाना गाया—"माँ! मुझे पागल कर दे।"

गाने के साथ ही इधर अद्भुत दृश्य दिखायी देने लगा—भावावेश में सब लोग पागल हो रहे

हैं। सबसे पहले आसन छोड़कर भावावेश में विजयकृष्ण खड़े हुए, फिर रामकृष्ण अपनी देह की कठिन असाध्य व्याधि को बिल्कुल भूल गये हैं। सामने डाक्टर हैं। वे भी खड़े हो गये, न रोगी को होश है न डाक्टर को। छोटे नरेन्द्र और लाटू दोनों को भाव समाधि हो गयी। सब के सब स्थिर और निस्पन्द हो रहे हैं। भाव का उपशम होने पर कोई हँस रहे हैं कोई रो रहे हैं, मानो कुछ मतवाले इकट्ठे हो गये हों।

इस घटना के बाद लोगों ने आसन ग्रहण किया। रात के आठ बज गये हैं। फिर बातचीत होने लगी।

श्रीरामकृष्ण (डाक्टर सरकार से)—"यह जो भाव तुमने देखा, इसके सम्बन्ध में तुम्हारा साइन्स क्या कहता है? तुम्हें क्या यह जान पड़ता है कि यह सब ढोंग है?"

डाक्टर साहब (श्रीरामकृष्ण से)—"जहाँ इतने आदमियों को ऐसा हो रहा है, वहाँ तो स्वाभाविक ही जान पड़ता है, ढोंग नहीं मालूम होता। (नरेन्द्र से) जब तुम गा रहे थे, माँ पागल कर दे, अब ज्ञान और विचार की आवश्यकता नहीं है।" तब मुझसे रहा नहीं गया, खड़ा हो गया, फिर बड़ी मुश्किल से भाव को दबाना पड़ा। मैंने सोचा कि बाहरी दिखावा न होने देना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण (डाक्टर से, हँसकर)—तुम गम्भीरात्मा हो। अचल और सुमेरुवत् हो (सब (हँसते हैं) तुम गम्भीरात्मा हो।"

बातचीत होती रही। थोड़ी देर बाद विजयकृष्ण ने कहा, "न जाने कौन मेरे साथ सब समय रहते हैं। मेरे दूर रहने पर भी वे मुझे बतला देते हैं, कहाँ क्या हो रहा है।

नरेन्द्र, "स्वर्गीय दूत की तरह रखवाली करते हुए।"

विजय, "ढाके में इन्हें (श्रीरामकृष्ण को) मैंने देखा है। देह छूकर!"

श्रीरामकृष्ण,—(हँसते हुए)—"तो वह कोई दूसरा होगा।"

नरेन्द्र—मैंने भी इन्हें कई बार देखा है।[1] (विजय से) अतएव किस तरह कहूँ कि आपकी बात पर मुझे विश्वास नहीं होता।"[2]

(१ इस विषय में अपने अनुभव को नरेन्द्र नाथ ने स्वयं वर्णन कर अन्यत्र बताया था, "कैसी अद्भुत शक्ति है। रात को कमरे में किवाड़ लगाकर मैं बिछौने पर पड़ा था, एकाएक आकर्षित कर दक्षिणेश्वर में हाजिर कर दिया शरीर के भीतर जो है उसी को, उसके बाद अनेक बातें और उपदेश सुनाकर फिर लौटा दिया! सब कर सकते हैं—दक्षिणेश्वर के गौरांगराय सब कुछ कर सकते हैं।" श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग—तृतीय खण्ड पृष्ठ संख्या १२३।

(२) श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग तीसरा, २०वाँ परिच्छेद से लिया गया है। पृष्ठ संख्या ३६६-३७७।

सद्गुरु स्वयं उपस्थित होते हैं।

—स्वामी शशांकानन्द
प्राचार्य
रामकृष्ण मिशन
समाज सेवक शिक्षण मन्दिर
बेलुड़ मठ, हावड़ा।

सद्गुरु कोई ऐसी वस्तु तो है नहीं जो बाजार में जाएँ और खरीद लाएँ। फिर भी उसका अनुसंधान तो करना ही होगा, उसे पहचानना तो अवश्य ही पड़ेगा। छान्दोग्योपनिषद् में प्रसङ्ग आता है कि उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, भल्लवि के पुत्र का पुत्र इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष का पुत्र जन और अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल, ये सब महागृहस्थ और परमश्रोत्रिय अर्थात् जो श्रुति के ज्ञान से सम्पन्न थे, उन सब ने एकत्रित होकर परस्पर विचार किया कि उनकी आत्मा कौन है और ब्रह्म क्या है। उन पूजनीयों ने स्थिर किया कि यह अरुण का पुत्र उद्दालक इस समय इस वैश्वानर आत्मा को जानता है; अतः, उन्हें उसके पास ही जाना चाहिए। उनके वहाँ पहुँचने पर अरुणपुत्र उद्दालक ने निश्चय किया कि ये श्रुति के जानने वाले महागृहस्थ जो प्रश्न करेंगे मैं उन्हें पूरी तरह से न बता सकूँगा। उनके लिए तो ऐसा उपदेष्टा चाहिए जिसने उस आत्मा को भली प्रकार से जाना है अर्थात् जिसने इस आत्मा की अनुभूति की है। ऐसा सोचकर उसने उन पूजनीयों से कहा, "हे पूजनीयगण ! इस समय केकय कुमार अश्वपति इस वैश्वानर संज्ञक आत्मा को अच्छी तरह से जानता है। आइए हम उसी के पास चलें।" ऐसा कहकर वे सभी केकय कुमार अश्वपति के पास गये। और वहाँ उन सब ने ज्ञान प्राप्त किया। उपनिषदों में इस प्रकार से गुरु की खोज करने का प्रसङ्ग मिलता है।

स्वामी विवेकानन्दजी ने भी कहा है कि सबसे पहले सद्गुरु की खोज करनी चाहिए। वे कहते हैं, 'पर पहले तुमको एक गुरु, एक सच्चा गुरु, खोजना चाहिए और तुमको यह याद रखना चाहिए कि वह केवल मामूली मनुष्य नहीं होता। तुमको शरीरधारी गुरु मिल सकता है, पर वास्तविक गुरु शरीर में नहीं होता; वह भौतिक मनुष्य नहीं होता—वह वह नहीं होता, जो तुम्हारी आँखों को दिखायी देता है। यह हो सकता है कि गुरु तुम्हारे पास मनुष्य के रूप में आये और तुम उससे शक्ति प्राप्त करो, कभी-कभी वह स्वप्न में आएगा और संसार को कुछ दे जाएगा। गुरु की शक्ति हम तक अनेक प्रकार से आ सकती है। पर हम साधारण नश्वर प्राणियों के लिए गुरु को ही आना चाहिए और उसके आने तक हमारी तैयारी चलती रहनी चाहिए।" "...और यह भी प्रकृति का एक बड़ा अद्भुत नियम है कि ज्यों ही भूमि तैयार हो जाती है, त्यों ही बीज भी आ जाता है, और वह आता भी है। ज्यों ही आत्मा की धर्म-पिपासा प्रबल होती है, त्यों ही धर्म-शक्ति संचारक पुरुष को उस आत्मा की सहायता के लिए आना ही चाहिए, और वे आते भी हैं।"

वास्तव में देखा जाता है कि जब साधक ब्रह्मतत्व की खोज करते-करते थक जाता है, अपने ध्येय तक पहुँचने का अटूट प्रयास करते हुए अपनी समस्त चेष्टाओं को विफल देखता है एवं असहाय तथा निरुपाय होकर शरणागति का आश्रय लेता

है तब परम कृपालु करुणामय भगवान ही सद्गुरु के रूप में अपना वरद हस्त बढ़ा देते हैं और अखण्डमण्डलाकर सर्वव्यापी ब्रह्म का पता बता देते हैं—उस तक पहुँचा ही देते हैं।

रामचरितमानस में इस तथ्य को समझने के लिए एक बड़ा ही सुन्दर उदाहरण मिलता है। घटना किष्किन्धाकाण्ड की है। भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणजी ने महाराज सुग्रीव से मैत्री कर ली और बड़े जोर-शोर से माता जानकी की खोज के लिए महाराज सुग्रीव ने असंख्य वानर सेना को बुलाकर उनके जीवन का लक्ष्य बाँध दिया। उन्होंने कहा.

राम काजु अरु मोर निहोरा।
बानर जूथ जाहु चहूँ ओरा॥
जनक सुता कहुँ खोजहु जाई।
मास दिवस महँ आएहु भाई॥

अर्थात्—हे वानर समूहों। यह श्रीराम जी का कार्य है और मेरा अनुरोध है कि तुम चारों ओर जाओ। जानकी जी का पता लगा कर हे भाई महीने भर में वापिस आ जाना।

सब वानर समूह के जीवन का उद्देश्य बन गया माता जानकी जी का अनुसंधान और यदि कोई बानर इस ध्येय की पूर्ति किए बिना लौट आया तो उसे जीवन से ही हाथ धोने पड़ेंगे। क्योंकि

"अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ।
आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ॥"

अर्थात् एक महीने की अवधि बिताकर बिना पता लगाए ही जो लौटकर आवेगा, सुग्रीव महाराज कहते हैं, कि उन्हें उसका वध करना पड़ेगा।

जब साधक का मन यह दृढ़ निश्चय कर लेता है कि या तो उसे ईश्वर प्राप्ति करनी है या मृत्यु को वरण करना हैं, तब इसी उद्देश्य से वह ईश्वर की खोज शुरू कर देता है। किन्तु जब समस्त प्रचेष्टाओं के बावजूद उसे केवल श्रम ही हाथ लगता है तो वह मानो मरना ही चाहता है। ठीक उस समय न जाने कहाँ से सद्गुरु रूप में ईश्वर ही उसका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं। रामचरितमानस के कथित प्रसङ्ग में भी हम देखते हैं कि सब वानर वन, नदी, तालाब और पर्वतों की कन्दराओं में माता जानकी को खोजते हुए चले जाते थे। मन श्रीराम जी के कार्य में अर्थात् माता जानकी की खोज में लीन है। माता जानकी को खोजते-खोजते वे सब अपनी सुध बुध ही खो बैठे थे। उस पर फिर सबको अत्यन्त जल-तृष्णा लगी जिससे सब अत्यन्त व्याकुल हो गये किन्तु जल कहीं भी न मिला। घने जङ्गल में रास्ता भी भुला गया। ऐसी अन्धकारमयी, नैराश्यपूर्ण अवस्था में मरने के सिवा और कोई चारा ही नहीं रह गया था।

विवेक-शिखा के अप्रैल १९९२ के अंक में "सद्गुरु की खोज" नामक लेख में आपने पढ़ा ही होगा कि राजा प्रताप भानु भी प्यास से व्याकुल होकर जंगल में रास्ता भूलकर भटकता हुआ घूम रहा था और उसके पास भी मरने के सिवा और कोई चारा न था। फिर हनुमानजी महाराज जब संजीवनी बूटी लाने जा रहे थे तो उन्हें भी पिपासा लगी थी और वे जल की तलाश में पृथ्वी पर उतर आये थे। किन्तु भेद तो इतना ही था कि राजा प्रताप भानु के मन में चक्रवर्ती राजा होने की आकांक्षा थी और उसी कारण उसकी चुँधियायी आँखें कपटी मुनि के वेश में अपने शत्रु को न पहचान सकी और अन्त हुआ कुल नाश तथा राक्षस योनि की प्राप्ति। किन्तु श्री हनुमान जी महाराज के मन में तो कोई आकांक्षा ही नहीं थी। उनका ध्येय तो केवल श्रीराम का कार्य था इसलिए कपटीमुनि वेषधारी कालनेमि राक्षस उनका कुछ भी न बिगाड़ सका। उल्टे हनुमानजी ने ही उसका अंत कर दिया था।

हनुमानजी महाराज तो श्रीराम के सिवा अन्य कुछ न जानते थे। शरणागति के वे साक्षात प्रतीक थे।

वही परम भक्त हनुमानजी आज इस बानर सेना का नेतृत्व कर रहे थे। सब बानर लोगों के वे अग्रगण्य थे। हनुमान जी महाराज ने जब यह देखा कि ये सब बन्दर मरना ही चाहते हैं और श्रीराम का कार्य अर्थात् माता जानकी की खोज कैसे हो तो वे एक पर्वत की चोटी पर चढ़ गये।

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा ।
भूमि बिवर एक कौतुक पेखा ॥
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं ।
बहु तक खग प्रविसहिं तेहि माहीं ॥

पर्वत की चोटी पर चढ़कर हनुमान जी महाराज ने चारों ओर देखा यदि उन्हें कोई उपाय मिल जाए। उसी समय उन्होंने देखा कि पृथ्वी के अंदर एक गुफा है और उस गुफा पर चकवे बगले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत से पक्षी उसमें प्रवेश कर रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने धर्म पिपासुओं के लिए बड़ा ही मार्मिक संकेत यहाँ दिया है। यहाँ गुफा के ऊपर मंडराते चकवे बगले और हंस से यह जानना है कि ये पक्षी केवल उसी जगह मंडराते हैं जहाँ जलाशय हो। ठीक उसी प्रकार जहाँ बहुत-से धर्म-पिपासु चक्कर लगाते हों वहाँ निश्चय ही पिपासा शान्त करने वाले धर्मगुरु मिल ही जायेंगे। ऐसा ही निश्चय हनुमानजी महाराज का हुआ कि इसी गुफा में अवश्य ही जलाशय है जहाँ वानर समूह अपनी पिपासा और क्षुधा शान्त कर सकेगा।

गिरि ते उतरि पवनसुत आवा ।
सब कहुँ लै सोइ बिवर दिखावा ॥
आगे कै हनुमंतहि लीन्हा ।
पैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥

—हनुमानजी महाराज ने पहाड़ से उतरकर सब वानरों को गुफा दिखायी और हनुमानजी का अनुसरण करते हुए गुफा में घुसने में देर न की। एक साधक भी जब शरणागति का आश्रय लेता है तो शरणागति उसे सद्गुरु तक पहुँचा देती है जो उसे ईश्वर का पता बता देते हैं। वानर यूथ ने गुफा में घुसकर देखा तो दंग रह गए।

दीख जाई उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रूचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ॥

उन्होंने देखा कि एक उत्तम बगीचा और तालाब है जिसमें बहुत से कमल के फूल खिले हैं। वहीं एक सुन्दर मन्दिर है जिसमें एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी है।

इस तपस्विनी को देखकर सभी ने दूर से ही सिर नवाया और पूछने पर अपनी समस्या उन्हें निवेदन की। तपस्विनी ने उन्हें पहले तो जलपान कर अपनी क्लान्ति, पिपासा और क्षुधा को निवृत्त करने को कहा। वानरों ने वैसा ही किया और स्नान और फलाहार के पश्चात पुनः उनके निकट उपस्थित हुए तो तपस्विनी ने उन्हें कहा, कि मैं तो तुम लोगों के लिए ही बैठी थी। तुम लोग निराश न होओ। आज मेरा कार्य सम्पन्न हो जाएगा फिर मैं श्री रघुनाथजी के पास चली जाऊँगी।

मूदहु नयन बिबर तजि जाहू ।
पैहहु सीतहि जनि पछिताहू ॥

तुम लोग निराश न होओ। आँखें मूदो और गुफा छोड़कर बाहर जाओ तो तुम सीताजी को पा जाओगे।

कैसा अद्भुत संकेत गोस्वामीजी कर रहे हैं? भला आँख मूँद कर कोई गुफा से बाहर निकल सकता है? जरा उपनिषद् के इस श्लोक को तो देखिए :

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयम्भू—
स्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
काश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष—
दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ (कठ उ० २/१/१)

अर्थात् ब्रह्मा ने इन्द्रियों को बहिर्मुखी बनाया है इसीलिए जीव बाह्य जगत् को ही देखता है भीतर में अन्तर्निहित आत्मा को नहीं देखता। कोई बिरला धीर बुद्धि वाला ही अमृतत्व की इच्छा से अपनी आँखें बाह्य जगत से हटाकर अन्तर्निहित प्रत्यक् आत्मा को देखता है।

अर्थात् बाह्य जगत में तुम जिसे खोज रहे हो वह तो अन्तर्जगत में वास करता है। तुम बाह्य जगत से आँखें मूँद लो तो जिसे ढूंढ रहे हो उसकी प्राप्ति अवश्यम्भावी है। अर्थात् अन्तर्जगत में खोज करो।

बस सद्गुरु का कार्य इतना ही है कि वे पथ बता देते हैं। जिस प्रकार से पिपासा की तीव्र व्याकुलता में वानरों को तपस्विनी रूपी सद्गुरु की प्राप्ति हुई जिन्होंने माता जानकी की खोज का उपाय बताया उसी प्रकार धर्म-पिपासा की तीव्र व्याकुलता होने पर सद्गुरु का उपस्थित होना अनिवार्य है और वे ईश्वर प्राप्ति का उपाय बता देते हैं।

वानर समूह ने गुरु आदेश शिरोधार्य कर आँखें बन्द कर लीं तो वे देखते हैं :

नयन मूँदि पुनि देखहिं बीरा।
ठाढ़े सकल सिंधु के तीरा॥

नयन मूँद कर जब आँखें खोलीं तो सब वीर क्या देखते हैं कि सब समुद्र के तीर पर खड़े हैं। उसी प्रकार गुरु द्वारा बताए मार्ग पर चलने से ईश्वर की प्राप्ति सहज ही हो जाती है।

उपर्युक्त प्रसङ्ग में हम देखते हैं कि सद्गुरु स्वयं ही उपस्थित हो जाते हैं जैसे अरुणोदय का समय होने पर सूर्य स्वयं उपस्थित होते हैं। केवल अल्पबुद्धि ही गुरु की पहचान की बात सोचते हैं क्योंकि वह तो जुगनू के प्रकाश में सूर्य को देखने के समान होगा। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं, "सूर्य को प्रकाश में लाने के लिए मशाल की आवश्यकता नहीं होती। उसे देखने के लिए हमें दीया नहीं जलाना पड़ता। जब सूर्योदय होता है तो हम अपने आप जान जाते हैं कि सूर्य उग आया है। इसी प्रकार जब हमारी सहायता के लिए गुरु का आगमन होता है, तो आत्मा अपने आप जान लेती है कि उस पर अब सत्य के सूर्य की किरणें पड़ने लगी हैं।"

सद्गुरु तो सूर्य की भाँति उदित होते हैं। उनके उपस्थित होने पर समस्त अन्धकार दूर हो जाता है, संशय मिट जाते हैं, उनकी उपस्थिति पर विश्वास हो उठता है। उन्हें ढूँढना नहीं होता। उनकी उपस्थिति होने पर अनुभव होता है कि ये ही वे सद्गुरु हैं जिनकी मुझे खोज थी। इस सत्य का बहुत बढ़िया चित्रण हमें रामचरितमानस में मिलता है।

मिथिला नरेश राजा जनक ने सीता स्वयंवर का आयोजन किया। इस आयोजन की विशेषता थी धनुषयज्ञ। राजा जनक ने अपनी पुत्री का विवाह सबसे अधिक योग्य व्यक्ति से ही करना चाहा और उस योग्यता का एक मापदण्ड भी बना लिया। जो भी व्यक्ति शिवधनुष को तोड़ देगा उसी से जानकी का विवाह होगा। अर्थात् उसी को राजा जनक जानकी जी को सौंप देंगे।

प्रत्येक साधक यही कामना करता है कि मुझे योग्य सद्गुरु मिलें और वह भी योग्यता का एक मापदण्ड बना लेता है कि जो भी व्यक्ति मेरे भवचाप को तोड़ देंगे वे ही मेरे गुरु होंगे और उन्हीं को वह अपनी हृदयरूपी सीता सौंप देगा।

देश-विदेश के दूर-दूरान्तर से हजारों राजा

महाराजा आये जो यह दावा करते थे कि वे धनुष तोड़कर जानकी से विवाह करेंगे। दशा तो ऐसी ही है कि गुरु मिलें लाख-लाख चेला मिले न एक। इस संसार में भी ऐसे व्यक्तियों की संख्या हजारों लाखों में है जो यह दावा करते हैं कि उनमें साधक के भवचाप को तोड़ने की क्षमता है।

किन्तु इस सम्बन्ध में श्रीरामकृष्णदेव का मत बड़ा ही स्पष्ट और निश्चित है। वे कहते हैं,

"मनुष्य में वह शक्ति कहाँ कि, वह दूसरे को संसार बन्धन से मुक्त कर सके? यह भुवन मोहिनी माया जिनकी है, वे ही इस माया से मुक्त कर सकते हैं। सच्चिदानन्द गुरु को छोड़कर और दुसरी गति नहीं है। जिसको ईश्वर-दर्शन नहीं हुआ, उनका आदेश नहीं मिला, जो ईश्वर की शक्ति से शक्तिशाली नहीं है, उसकी क्या मजाल कि जीवों का भवबन्धन मोचन कर सके?

"मैं एक दिन पंचवटी के निकट झाऊतल्ले की ओर जा रहा था। एक मेढ़क की आवाज सुनायी दी—जान पड़ा कि साँप ने पकड़ा है। काफी देर बाद जब लौटने लगा तब भी उस मेढ़क की आवाज सुनायी दे रही थी। बढ़कर देखा तो दिखायी दिया कि एक कौड़ियाला साँप उस मेढ़क को पकड़े हुए है—न छोड़ सकता है, न निगल सकता है; उस मेढक की भी भवव्यथा दूर नहीं हो रही है। तब मैंने सोचा कि यदि असल साँप पकड़ता तो तीन ही पुकार में इसको चुप हो जाना पड़ता। इस कौड़ियाल ने पकड़ा है, इसीलिए साँप की भी दुर्दशा है और मेढक की भी।

"यदि सद्गुरु हो तो जीव का अहंकार तीन ही पुकार में दूर होता है। गुरु कच्चा हुआ तो गुरु की भी दुर्दशा है और शिष्य की भी। शिष्य का अहंकार दूर नहीं होता, न उसके भव-बन्धन की फाँस ही कटती है। कच्चे गुरु के पल्ले पड़ा तो शिष्य मुक्त नहीं होता।" (श्री श्रीरामकृष्ण वचनामृत प्रथम भाग—पृ० १९०-९१)

तो इन लाख-लाख गुरु होने का दावा करने वालों के भाग्य में तो कौड़ियल साँप की भांति कष्ट ही हाथ लगता है और शिष्य को भी भवचाप से मुक्ति नहीं मिलती। रामचरितमानस में भी मिथिला नरेश की सीता-स्वयंवर सभा में यही चित्र देखने को मिलता है। एक-एक करके अनेक राजाओं ने शिव-धनुष को तोड़ने को दावा किया किन्तु जब धनुष को हाथ लगाया तो देखा वह तो टस से मस भी नहीं होता। फिर उन समवेत दस हजार राजाओं ने एक साथ मिलकर एक ही बार में धनुष उठाना चाहा परन्तु कोई फल न निकला। गोस्वामी तुलसीदास जो कहते हैं

श्रीहत भए हारि हियँ राजा।
बैठे निज निज जाइ समाजा॥
कहहु काहि यह लाभ न भावा।
काहु न संकर चाप चढ़ावा॥
रहउ चढ़ाउब तोरब भाई।
तिलु भरि भूमि न सके छड़ाई॥

—राजा लोग हृदय से हारकर श्रीहीन (हतप्रभ) हो गये और अपने-अपने समाज में जा बैठे। कहिए, यह लाभ किसको अच्छा नहीं लगता? परन्तु किसी ने भी शङ्करजी का धनुष नहीं चढ़ाया। अरे भाई चढ़ाना तो दूर रहा, कोई तिल भर भूमि भी छुड़ा न सका।

ठीक उसी प्रकार से दूसरों के भवचाप को तोड़ने का दावा करने वाले जब ऐसा करने में रत्तीभर भी सफल नहीं होते तो हतप्रभ होकर जो-जो जिस समाज के उपयुक्त होते हैं लौट जाते हैं अर्थात् वे पण्डित समाज में लौट जाते हैं, आचार्यों के समाज में लौट जाते हैं, विद्वानों के समाज में लौट जाते हैं—वे ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न सद्गुरु का कार्य करने में तनिक भी सफल

नहीं होते। ये साधारण गुरु अकेले तो क्या, ऐसे दस हजार गुरु मिलकर भी किसी एक शिष्य के भवचाप को नहीं तोड़ सकते।

ऐसे गुरुओं को प्राप्त कर शिष्य निराश हो जाता है और जनकजी की भाँति पछताता है। जनक जी कहते हैं :

सुकृत जाइ जौं पनु परिहरऊँ।
कुअँरि कुआरि रहउ का करऊँ॥
जौं जनतेउँ बिनु भट भुवि भाई।
तो पनु करि होतेउँ न हँसाई॥

"यदि प्रण छोड़ता हूँ तो पुण्य जाता है, इसलिए क्या करूँ, कन्या कुँआरी ही रहे। यदि मैं जानता कि पृथ्वी वीरों से शून्य है, तो प्रण करके उपहास का पात्र न बनता।"

कच्चे गुरु के पल्ले पड़कर शिष्य पछताने लगता है क्या इस पृथ्वी पर गुरु होने योग्य कोई नहीं? यदि ऐसा जानता तो धर्म-पथ पर पाँव ही नहीं रखता। मैंने तो प्रण किया था कि भव-सागर पार करूँगा किन्तु अब तो इस प्रण के पूर्ण न होने से पाप ही हाथ लगा और यह मानव जीवन भी निरर्थक ही गया—केवल जग-हँसाई ही हाथ लगी।

किन्तु बात ऐसी नहीं है। शिष्य की जबतक तैयारी नहीं हो जाती, सद्गुरु के द्वारा प्रदत्त ज्ञान ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती तब तक सद्गुरु सामने रहने पर भी चुप-चाप बैठे रहते हैं। सर्वसमर्थ, सर्वज्ञ, सकल कला और गुणों के धाम अखण्ड सच्चिदानन्द भगवान श्रीराम मायाधीश होते हुए भी जीव के भवचाप को फूंक से उड़ाने की क्षमता रखते हुए भी चुपचाप बैठे थे। जनक जी के पश्चाताप एवं निराशा के वचन सुनकर के भी वे खामोश थे क्योंकि अभी उचित समय नहीं आया था। स्वामी विवेकानन्दजी कहते हैं, "तुम भले ही संसार का कोना-कोना छान डालो, पर जब तक तुम्हारा हृदय धर्म को ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हो जाता और जब तक गुरु का आगमन नहीं होता तब तक तुम धर्म को नहीं पाओगे।"

समय अब उपस्थित हुआ। अनुकूल परिस्थितियाँ कह उठीं कि अब समय आ गया है :—

बिस्वामित्र समय सुभ जानी।
बोले अति सनेहमय बानी।
उठहु राम भंजहु भव चापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

विश्वामित्र जी ने शुभ घड़ी जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी से श्रीराम से कहा—हे राम! उठो, शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात्! जनक का सन्ताप मिटाओ। मानो समय गुरु को कह देता कि अमुक शिष्य के भव-बन्धन कटने का समय आ गया है। जाओ उसके परिताप को दूर करो।

ऐसा शुभ समय उपस्थित होने पर शिष्य देखता है कि अनायास ही सद्गुरु उसके सामने उपस्थित हो गये हैं। साधक उन्हें पाकर कृतकृत्य हो जाता है।

रामचरितमानस में गोस्वामी जी कहते हैं,

उदित उदयगिरि मंच पर रघुवर बालपतंग।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग॥

मंचरूपी उदयाचल पर रघुनाथजी रूपी बालसूर्य के उदय होते ही सब संतरूपी कमल खिल उठे। उसी प्रकार सद्गुरु के भी सूर्य की भाँति उदित होने पर शिष्य का हृदय खिल उठता है।

गुरहि प्रनामु मनहिं मन कीन्हा।
अति लाघवँ उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनी जिमि जब लयऊ।
पुनि नभ धनु मंडल सम भयऊ॥

लेत चढ़ावत खेंचत गाढ़ें ।
काहुँ न लखा देख सबु ठाढ़ें ।।
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा ।
भरे भुवन धुनि घोर कठोरा ।।

श्रीराम जी ने बड़ी ही फुर्ती से धनुष को उठा लिया। जब उसे हाथ में लिया, तब वह धनुष बिजली की तरह चमका और फिर आकाश में मण्डल जैसा मण्डलाकार हो गया। यह कार्य इतने क्षण भर में हुआ कि धनुष लेते चढ़ाते और जोर से खींचते हुए किसी ने नहीं देखा। सबने श्रीराम जी को खड़े देखा। उसी क्षण श्रीराम जी ने धनुष को बीच से तोड़ डाला।

सद्गुरु की प्राप्ति होने पर उनकी कृपा से शिष्य का भवचाप भी क्षणभर में टूट जाता है और वह शीघ्र ही गुरु प्रदत्त मार्ग पर अग्रसर हो ईश्वर प्राप्ति कर जीवन को धन्य कर लेता है।

अतः सद्गुरु खोजने की वस्तु नहीं है लक्षणों को देखकर पहचानने से पकड़ में नहीं आते; बल्कि शुभ समय आने पर वे स्वयं उपस्थित होते हैं और अपना परिचय आप ही देते हैं।

विवेक शिखा—स्थायी कोष के दाता

११.	श्री रामलायक सिंह	—	सम्होता (छपरा)	२५ रुपये
१२.	डा० एस पी० भार्गव	—	अजमेर	१०० रुपये
१३.	श्री राम छविला सिंह	—	मुजफ्फरपुर	२५ रुपये
१४.	श्री निखिल शिवहरे	—	दमोह (म० प्र०)	१५१ रुपये
१५.	श्रीमती उषारानी कर्ण	—	सुरसंड, (सीतामढ़ी)	१०० रुपये
१६.	श्री पी० सी० सरकार	—	नरेन्द्रपुर (प० बं०)	१०० रुपये
१७.	श्रीमती मीरा मित्रा	—	इलाहाबाद	२०१ रुपये
१८.	श्री गोपाल शं० तायवाडे	—	अमरावती (महाराष्ट्र)	१०० रुपये
१९.	श्री महादेव शि० गुंडावार	—	भद्रावती (महाराष्ट्र)	५० रुपये
२०.	श्री राजीव कुमार राजू	—	सैदपुर, पटना-४	३१ रुपये
२१.	श्री राज सिंह	—	गाजियाबाद (उ० प्र०)	५० रुपये
२२.	श्री चन्द्र मोहन	—	टुण्डला (उ० प्र०)	९८५ रुपये
२३.	श्री के० अनूप	—	अरुणाचल प्रदेश	२० रुपये
२४.	श्री शतदल साधु खान	—	सोनारपुर (पश्चिम बंगाल)	१०० रुपये
२५.	श्री ए० जी० डगाँवकर	—	यवतमाल	५१ रुपये

निवेदन— १. स्थायी कोष के लिए दान सम्पादकीय पते पर भेजने की कृपा करें।
२. चेक या ड्राफ्ट "विवेक शिखा" के नाम से भेजें।

कीर्तन का प्रभाव

—श्री ब्रजमोहन प्रसाद सिन्हा
उपाधीक्षक, शिक्षा विभाग, छपरा

माया ब्रह्म की उपलब्धि में विघ्न उपस्थित करने वाली महा ठगिनी है। वह अपने दो अस्त्रों-कामिनी और कांचन—द्वारा हमें नचाती रहती है। माया अत्यन्त ही चतुर नर्तकी है। नर्तकी को उलटने पर कीर्तन होता है। ठाकुर कहते थे कि परम विश्वासघातनी माया से त्राण पाने के लिए कीर्तन करना चाहिए। उनका नाम सदा ही लेना चाहिए। साधुओं का संग उनका नामगुण कीर्तन उनसे सर्वदा प्रार्थना करना। शरीर के इस वृक्ष में अहंकार का गिद्ध, कामनाओं का सर्प, क्रोध का कौवा तथा इन्द्रियों के पक्षी निवास करते हैं। श्रीरामकृष्ण—"उनका नाम-गुणगान करने से देह से सब पाप भाग जाते हैं। देहरूपी-वृक्ष पर पाप पक्षी बैठे हुए हैं; उनका नाम कीर्तन करना मानो ताली बजाना है ताली बजाने से जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर के सभी पक्षी भाग जाते हैं, उसी प्रकार उनके नाम गुण कीर्तन से सभी पाप भाग जाते हैं। फिर देखो मैदान के तालाब का जल धूप से स्वयं ही सूख जाता है। इसी प्रकार उनके नाम-गुणकीर्तन से पापरूपी तालाब का जल स्वयं ही सूख जाता है।"

सर्वोत्तम सत्संग नाम-संकीर्तन में भाग लेना ही है। नाम संकीर्तन चितरूपी दर्पण को परिमार्जित कर निर्मल बना देता है जिससे हृदय में प्रभु का प्रकाश फैलता है, और भक्त भी व्याधियों से अपने को मुक्त कर धन्य हो जाता है। कोरी बुद्धि के बल पर ईश्वरीय कृपा-शक्ति का रहस्य नहीं जाना जा सकता। उसके लिए अखण्ड तैल धारावत साधन भजन एवं कीर्तन की आवश्यकता है। व्याकुलतापूर्ण नाम कीर्तन का फल तत्काल मिलता है। इसके लिए ठाकुर दो उपाय बतलाते हैं, अभ्यास और अनुराग अर्थात् उन्हें देखने के लिए व्याकुलता। राम नाम का बटन दबाते रहने से हृदय नेत्र का टॉर्च जल उठता है और जीवन सार्थक हो जाता है। नाम-जप, संकीर्तन अमृत है। श्रद्धा और विश्वास ही भक्ति के प्राण हैं। शास्त्रों में कलियुग के लिए एकमात्र नाम संकीर्तन रूपी महायज्ञ की चर्चा की गयी है। जो श्रद्धापूर्वक नाम कीर्तन करेगा वह प्रभु को प्राप्त करेगा। इसलिए गुणों के ज्ञाता एवं सारग्राही पुरुष चारों युग में कलियुग की ही अधिक प्रशंसा करते हैं। कीर्तन एक वैज्ञानिक प्रक्रिया भी है। उसका प्रभाव व्यापक होता है। समूचा वातावरण जब कीर्तनमय हो जाता है तब मनुष्य का मन-मस्तिष्क उसी में ओत-प्रोत हो जाता है। फिर मनुष्य ही क्या जीव-जन्तु पशु-पक्षी भी उसमें रस मगन होकर झूमने लगते हैं। कीर्तन से मन को तन्मयता की प्राप्ति होती है। कीर्तन भगवत प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। विष्णु पुराण में कहा गया है कि जैसे अग्नि से धातुओं का मल जल जाता है वैसे ही कीर्तन से पाप घुल जाते हैं। वामन पुराण के अनुसार कीर्तन से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। गुरुड़ पुराण के मत में कीर्तन आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का साधन है। आदित्य पुराणानुसार कीर्तन से सभी इच्छाएं पूर्ण होती है। स्कन्द पुराण के अनुसार कीर्तन से मानसिक वाचिक और कायिक सभी प्रकार के पाप दूर हो जाते हैं। अग्नि पुराण के मत में कीर्तन से दुर्लभ गति की प्राप्ति होती है। वृहन्नारदीय पुराण के अनुसार "जब कीर्तन करने वाला तन्मय हो नृत्य करता है तब वह पृथ्वी के जिस भाग को स्पर्श करता है वह भू-भाग पवित्र हो जाता है। वाराह

पुराण में कीर्तन मोक्ष प्राप्ति का सरल साधन बतलाया गया है। श्रुति-स्मृति पुराणादि शास्त्रों में कीर्तन को सर्वोपरि पाप-रोगादि नाशक एवं मोक्ष साधक माना गया है। युग धर्म का वर्णन करते हुए योगीश्वर करमाजन ने कलियुग के लिए नाम संकीर्तन को ही बड़ा यज्ञ, कर्त्तव्य माना है। श्रेष्ठ-बुद्धि सम्पन्न पुरुष ऐसे यज्ञों के द्वारा उनकी आराधना करते हैं जिनमें नाम गुण लीला आदि के कीर्तन की प्रधानता रहती है। शिव संहिता में भगवान शंकर ने भी संकीर्तन की महिमा का बखान किया है। हरिकीर्तन सम्पूर्ण पापों का नाश करता है। निष्ठापूर्वक किया गया नाम संकीर्तन वायुमंडल में अत्यन्त शक्तिशाली कम्पन पैदा करता है। जितना ही अधिक नाम संकीर्तन होगा उतना ही अधिक सद्विचारों से परिपूर्ण वातावरण रहेगा और मनुष्य पर प्रभाव डाल कर उसमें आत्मिक विकास पैदा करेगा एवं अन्ततोगत्वा सही अर्थ में मानवता का प्रतिष्ठापन होगा। कीर्तन से सात्विक भाव जगते हैं, मन शु ,हो जाता है तथा हृदय में ज्ञान अपने-आप प्रकट होने लगता है।

श्रीरामकृष्णदेव अपने पास आने वाले अनगिनत साधकों में से अधिकांश को भक्ति-मार्ग में ही प्रवृत्त करते हुए नाम संकीर्तन का उपदेश दिया करते थे। शहीदों के सिरताज सिक्ख धर्म के पाँचवें गुरु अर्जुनदेवजी का कहना है कि मेरे मित्र सज्जन मुझे वह स्थान बताओ जहाँ हर समय कीर्तन होता हो, मेरा मन वहाँ जाकर उस प्रभु की याद में रम जाता है—

"स्थान बतावहु मीता,
जाके हरि हरि कीर्तन नीता।

कीर्तन गान करना हमारी जीभ का श्रेष्ठ कर्म ही है

दया कीरत प्रभु की गाऊ मेरी रसना!
हे जिभवा तुम राम गुण गाऊ।

गुजरात के कीर्तन प्रेमी भक्त नरसी मेहता ने हरिकीर्तन को सिद्धिदायक अमोघ साधन कहा है जो बिना मूल्य के केवल हरि-हरि रटने से सिद्ध हो जाता है। महाराष्ट्र के संत नामदेवजी महाराज ने नाम संकीर्तन को ही सर्वोत्तम धर्म बतलाया है—

"हरि हरि करत मिटे सभि भरमा।
हरि के नाम ले उत्तम धरमा।"

संत तुकाराम प्रतिपादित संकीर्तन पद्धति के अनुसार संकीर्तन से केवल इस जन्म के नहीं अपितु जन्म-जन्मान्तरों के पाप जल कर राख हो जाते हैं। नाम संकीर्तन की महिमा अनादि सिद्ध है। महात्मा रैदास की दृष्टि में संकीर्तन बिना सभी साधन निःसार है। वे कहते थे "एक श्रीनाम विनु सकल जगत् यह फंदा है।" "हरि सा हीरा छोड़ के करे आन की आस, ते नर यमपुर जाहिंगे सत्य भासै रैदास"। नानकदेवजी ने बड़े मार्मिक शब्दों में गाया है

"रेमन राम सो कर प्रीत,
श्रवण गोविन्दगुन, सुनो और गाउ रसना गीत।
कहत नानक राम भज ले जान अवसर वीत।।

वे कहते थे "नानक दुखिया सब संसार सो सुखिया जो नाम अधार"!!

कीर्तन में भगवान भक्त और नाम का त्रिवेणी संङ्गम होता है। कीर्तन वाणी का तप है। संत तुलसीदासजी भगवन्नाम संकीर्तन को ही जीवन का आधार बतलाया है—

"कलियुग केवल हरिगुन गाहा!
गावत नर पावहि भव थाहा!!

संत रज्जबजी का कथन है:—

सब ही वेद विलोय करि, अंत दिढावै नाम!
तो रज्जब तू राम भजि, तजि दे थोथा काम!!
रज्जब अज्जब यह मँता निसिदिन नाम न भूल!
मनसा वाचा करमणा सुमिरन सब सुख मूल!!
चारो वेद ढंढोर के अन्त कहोगे राम!
सो रज्जब पहले कहो एते ही में काम!!

कीर्तन जीव और शिव के बीच की कड़ी है। नामनिष्ठ सन्त ज्ञानेश्वरजी का मत है कि नाम संकीर्तन परम पिता के प्रति अभिवादन है।—

"नाम लेने का मजा जिसकी जुबां पर आ गया !
वो जीवन मुक्त हो गया चारो पदार्थ पा गया !!
मीरावाई मेरो मन रामहि राम रटै रे !
राम-नाम जप लीजै प्राणी कोटिक थाप कटै रे !!

दरिया साहब की राम रटन बड़ी विचित्र थी :—

"सकल कवित का अर्थ, सकल बात की बात !
दरिया सुमिरन राम का कर लीजै दिन रात !!

दरिया साहब डंके की चोट पर कहते थे :—

दरिया दूजे धरम से संसय मिटे न सूल !
राम नाम रटता रहे, सर्व धर्म का मूल !!

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर जब एक बार अपने पिताजी के साथ अमृतसर गये तब वहाँ हरि मन्दिर में हो रहे कीर्तन से इतने प्रभावित हुए कि एक मास तक प्रतिदिन कीर्तन सुनते रहे। प्रेम एवं मस्ती में सराबोर होकर कीर्तन करने एवं सुनने वाले के बारे में गुरु ग्रन्थ साहब में लिखा है—

'हरि किरतनु सुनै, हरि कीरतनु गावै।
जिस जन दुःख निकट नहीं आवै॥

सिख धर्म में कहा गया है :—कलियुग आ गया है अतः कीर्तन का बीज बोओ। यही बीज फूल दगा जिसे हम ग्रहण कर प्रभु के दरबार तक पहुँच सकते हैं। इस धर्म का उपदेश है, गुरुद्वारे हरि कीर्तन सुनिए। पूज्य देवराहा बाबा का आदेश है अपने परिवार के सदस्यों को एकत्र कर प्रतिदिन नाम संकीर्तन करो बाधाएँ स्वतः दूर भागेंगी।

देवर्षि नारदजी स्वयं अपनी स्थिति के विषय में कहते हैं "जब मैं परम पावनचरण उदार श्रवा प्रभु के गुणों का संकीर्तन गान करने लगता हूँ तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्त में बुलाये हुए की भाँति प्रकट हो जाते हैं। कहते हैं विश्व साहित्य में सर्व प्रथम "संकीर्तन पद का प्रयोग महर्षि वाल्मीकि ने ही किया जो श्रेष्ठ भावपूर्ण भी है। भगवन्नाम यश कीर्तनकारों में महर्षि वाल्मीकि का नाम अद्वितीय है। रामनाम का विपरीत कीर्तन करने पर भी महर्षि वाल्मीकि ब्रह्म के तुल्य पूज्य एवं शक्तिशाली हो गये थे। सच तो यह है कि श्री हनुमानजी ने भगवन्नाम कीर्तन की साधना द्वारा प्रभु श्रीराम को अपने वशीभूत कर रखा था। यह उनकी साधना का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है :—

सुमिरि पवनसुत पावन नामू !
अपने बस करि राखे रामू !!

श्री हनुमानजी प्रभु का यशोगान सुनने के रसिक हैं। यह हनुमान चालीसा में उल्लिखित है "प्रभु चरित्र सुनिवे को रसिया"।

गाँधीजी का ईश्वर पर अटल विश्वास था वे रामनाम को, वासना-विजय का अमोघ मंत्र मानते थे और कहा करते थे कि एकमात्र वैद्य और सच्चा डाक्टर तो राम ही हैं। राम नाम ही उनका बल था। रघुपति राघव राजा राम के कीर्तन को प्रार्थना का सबसे महत्वपूर्ण अंग मानते थे। नरसी मेहता का वैष्णव जन तो तेने कहिये भजन उनको बहुत प्रिय था। सगुण भक्ति धारा की एवं कृष्ण भक्ति शाखा के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदासजी एकतारा पर ऐकान्तिक संकीर्तन में मस्त रहते थे और सुनने वालों को भाव विभोर कर देते थे। इनके पद बोलो भैया कृष्ण गोविन्द हरी ! माल दाम कछु नहीं बैठत हैं छुटत नहीं गठरी !!

यह काया कागद की पुतरी दिन में जात जरी !
जा मुख "सूर" प्रभु नहि उचरत ता मुख धूर परी !!

चैतन्य महाप्रभु ने कलिकाल में संसार-सागर को पार करने वाली नौका रूपी संकीर्तन का दिव्य संदेश जन-जन तक पहुँचाया। इन्होंने मुक्तकण्ठ

से यह घोषणा की थी कि भय न करो, सबसे बड़ा प्रायश्चित और परमात्मा के प्रेम-सम्पादन का सर्वोत्तम साधन श्री हरिनाम संकीर्तन ही है। तिनके से भी नीचा होकर, वृक्ष से भी सहनशील होकर दूसरों का मान करते हुए और स्वयं अमानी रहकर सदा सकीर्तन कर एवं ससार-वासना का परित्याग कर दृढ़ विश्वास के साथ इसी में लग जाओ और अपना उद्धार कर लो। कागभुशुण्डजी ने कलिकाल को पाप और अवगुणों का घर तो कहा है पर इसमें एक बड़ा गुण यह भी बतलाया है कि जो गति सत्ययुग त्रेता और द्वापर में पूजा, यज्ञ, और योग से मिलती है वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान के संकीर्तन से पा जाते हैं

कृत जुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग !
जो गति होई सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग !!

संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, श्री एकनाथजी, संत तुकाराम, महात्मा सूरदासजी श्री चैतन्य महाप्रभु, संत वल्लभाचार्य, मीराबाई, नानकदेव, तुकाराम, रामदास, ज्ञानदेव, तुलसीदास नन्द दास, चरणदास, दादू दयाल, सुन्दर दास, श्री रूपकलाजी रामाजी आदि सभी ने कीर्तन का सहारा लेकर समाज को एक सूत्र में बाँध रखा और जाति-पाँति के भेद-भाव को दूर करने का सफल प्रयास किया तथा हरिनाम कीर्तन को ही जीवों के कल्याण का प्रधान उपाय समझा और अपनी दिव्यवाणी से इसी का प्रचार किया।

छपरा जिले के सन्त श्री लाटूजी महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) अपने बाल्य काल में प्राकृतिक परिवेश में विभोर होकर "मनुआ रे सीता राम भजन कर लीजै" गाया करते थे। श्री अद्भुतानन्दजी महाराज के आराध्य देव श्री रामकृष्णदेव तो कीर्तन के महत्व को प्रमाणित करते हैं। ब्राह्म समाज के श्री त्रैलोक्य गाना गा रहे हैं। श्रीरामकृष्ण कीर्तन सुनते-सुनते एकाएक खड़े हो गये और ईश्वर के आवेश में बाह्यज्ञान-शून्य हो गये। एकदम अन्तर्मुख, समाधिमग्न। खड़े-खड़े समाधिमग्न। सभी लोग घेर कर खड़े हुए। बंकिम व्यस्त होकर भीड़ हटाकर श्रीरामकृष्ण के पास जाकर एक दृष्टि से देख रहे हैं। उन्होंने कभी समाधि नहीं देखी थी। थोडी देर बाद थोड़ा बाह्य-ज्ञान होने पर श्रीरामकृष्ण प्रेम से उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। मानो श्री गौरांग श्रीवास के मन्दिर में भक्तों के साथ नृत्य कर रहे हैं। वह अद्भुत नृत्य बंकिम आदि अंग्रेजी पढ़े लोग देख कर दंग रह गये। क्या आश्चर्य! क्या इसी का नाम प्रेमानन्द है। ईश्वर से प्रेम करके क्या मनुष्य इतना मतवाला हो जाता है? क्या ऐसा ही नृत्य नवद्वीप में श्री गौरांग ने किया था? क्या इसी तरह नवद्वीप में और श्रीक्षेत्र में (पुरी में) प्रेम का बाजार बैठाया था। इसमें तो ढोंग नहीं हो सकता। ये सर्व-त्यागी हैं, इन्हें धन, मान, यश, किसी चीज को आवश्यकता नहीं है। तो क्या यही जीवन का उद्देश्य है? किसी ओर मन न लगाकर ईश्वर से प्रेम करना ही क्या जीवन का उद्देश्य है? अब उपाय क्या है? उन्होंने कहा, माँ के लिए बेचैन होकर व्याकुल होना, व्याकुलता से प्रेम करना ही उपाय है, प्रेम ही उद्देश्य है। सच्चा प्रेम आते ही दर्शन होता है।

भक्तगण इसी प्रकार चिन्तन करने लगे और उस अद्भुत देवदुर्लभ नृत्य एवं कीर्तन का आनन्द प्रत्यक्ष करने लगे। कीर्तन के बाद श्रीरामकृष्ण भूमिष्ट होकर प्रणाम कर रहे हैं "भगवान्-भक्त-भगवान्' इस कथन का उच्चारण करके कह रहे हैं ज्ञानी, योगी भक्त सभी के चरणों में प्रणाम।

(श्रीरामकृष्ण वचनामृत भाग-२ पृ० ५९६)

कीर्तन वेद लतिका का सर्वोत्तम फल है, चिन्मय है। मधुरों में भी मधुर है और मंगलों

का भी मंगल है। ब्रह्माजी भगवान् शंकर, देवर्षि नारद, व्यासदेव, वाल्मीकि, शाण्डिल्य, गर्ग तत्त्वेत्ता श्री शुकदेवजी, रुद्रावतार केशरी कुमार, प्रह्लाद, उद्धवजी, अम्बरीष ध्रुव ने भी जिसकी स्तुति की है वह हरि के नामों का महत्त्वपूर्ण संकीर्तन सचमुच बहुत सुन्दर नित्य जवीन एवं रुचिकर है।

इस युग में अन्य युगों की भाँति खाद्य-पदार्थों की प्रचुरता नहीं है। पवित्र स्थान बूरे लोगों के निवास से दूषित हो गये हैं, धर्म स्थल कलह के घर बन गये हैं, लोगों के हृदय में से धर्म के प्रति आस्था कम हो गई है। सत्पुरुष, सतशास्त्र तथा सत्सङ्ग का अभाव सा हो गया है। ऐसे घोर समय में भली-भाँति यज्ञ तथा पूजा-पाठ होना कठिन हो गया है। अतः सर्व साधारण कल्याणार्थी के सुलभ, सरल तोर सर्वश्रेष्ठ साधन कीर्तन हीं है। इसलिये कलियुग के लिए कीर्तनानन्द श्रीरामकृष्णदेव ने जप, ध्यान एवं कीर्त्तन के ऊपर अधिक जोर दिया है।

अन्याय और अंधविश्वास के विरुद्ध हैं स्वामी विवेकानन्द

पुरुषोत्तम अग्रवाल

विवेकानन्द का नाम सुनते ही औसत हिन्दू के दिमाग में क्या तस्वीर उभरती हैं? गेरुआ वस्त्रधारी, सुदर्शन, तेजस्वी, संन्यासी, जिसने सितम्बर, १८९३ की शिकागो धर्म संसद में हिन्दू धर्म की महानता और मनीषा के झंडे गाड़ दिये। हिन्दू होने पर शरमाने की बजाय गर्व करना सिखाया और साबित किया कि हम किसी से कम नहीं। यह तस्वीर असत्य नहीं, अर्द्धसत्य है। इसकी व्यापक लोकस्वीकृति का कारण भी असल में इसका अधूरापन ही है। अपने धर्म पर गर्व विवेकानन्द अवश्य करते थे। इस गर्व का राजनीतिक रूप से पराधीन समाज के लिए अर्थ भी बहुत ज्यादा था। मामला राजनीतिक पराधीनता के बावजूद सांस्कृतिक स्वाभिमान बनाए रखने का था। लेकिन विवेकानन्द का स्वाभिमान कूपमंडूकों के आत्मविश्वास से तो भिन्न था ही, उन पक्षियों के आक्रामक गर्व से भी अलग था जिनकी सभा में दोपहर अँधेरी होती है।

विवेकानन्द की समग्र चिन्ता और गतिविधि को एक अधूरी तस्वीर तक सीमित भी तो वे ही लोग करना चाहते हैं जो तीखे सवालों की चिलकती धूप के अस्तित्व तक से इंकार करने के इच्छुक हैं। ऐसे विवेकानन्द उनके काम के हैं जो हिन्दुत्व पर गर्व करना सिखाएँ। लेकिन शूद्रराज और समाजवाद की बातें करने वाले विवेकानन्द? कर्मयोगी की नैतिकता का आधार आस्तिकता को नहीं, सामाजिक न्याय के संघर्ष को मानने वाले विवेकानन्द? वे तो झंझट पैदा करेंगे। सो उनकी अधूरी तस्वीर को ही सबकुछ मानो। संन्यासी की तेजस्विता पर गर्व करो, लेकिन उस आत्मसंघर्ष और आलोचनात्मक विवेक से कोई वास्ता न रखो जिससे तेजस्विता संभव हुई। विवेक की जीवन्त उपस्थिति को जड़ प्रतिमा बना दो और चुनिंदा तारीखों पर फूलमाला अर्पित कर दो। यही नहीं, इस प्रतिमा के जरिए ऐसे वैसे सवालों का मुँह बन्द कर दो, जिनसे विवेकानन्द

तब टकराए और सौ बरस बाद आज भी टकराते। परंपरा के अपहरण की इस राजनीति के शिकार विवेकानन्द अकेले नहीं हैं। इसलिए सवाल सिर्फ उनका न हो कर सारी सांस्कृतिक विरासत को समझने और उसे मुक्ति की दिशा में विकसित करने का है। स्वयं विवेकानन्द के शब्दों में "ताक़त के बूते निर्बल की असमर्थता का फायदा उठाना धनी मानी वर्गों का विशेषाधिकार रहा है, और इस विशेषाधिकार को ध्वस्त करना ही हर युग की नैतिकता है।"

विवेकानन्द धार्मिक व्यक्ति थे, राजनीतिक नहीं। राजनीति से उनकी विरक्ति तो 'खबरदार, मुझे छूना मत' किस्म की थी। इसीलिए यह और भी ध्यान देने की बात है कि वे नैतिकता की परिभाषा विशेषाधिकार पर आधारित सत्तातंत्र के खिलाफ संघर्ष के रूप में करते हैं। तो क्या विवेकानन्द धर्म का सिर्फ इस्तेमाल कर रहे थे। जो व्यक्ति यह कहे कि 'भूखे के सामने भगवान पेश करना उसका अपमान है,' वह कैसा धार्मिक व्यक्ति था? जो व्यक्ति यह पूछे कि 'धर्म को सामाजिक नियमों से क्या प्रयोजन?' और फिर कहे कि 'धर्म को कोई हक नहीं कि समाज के लिए नियम गढ़े। उसे चाहिए कि अपनी हद में रहे।' उसे क्यों कर धार्मिक माना जाए? खासकर आज के माहौल में जबकि 'साधु संत' खुलेआम राजनीतिक उठापटक में लगे हुए हैं, आखिर विवेकानन्द के लिए धार्मिक होने का मतलब क्या था? उनका कठोर सामाजिक आलोचना और सक्रियता का धार्मिकता से किस प्रकार का संबंध था? ऐसे सवालों के संदर्भ में विवेकानन्द का अर्थ समझने के लिए रामकृष्ण परमहंस को समझना अनिवार्य है। साथ ही उस परिवेश के बुनियादी सवालों को भी, जिसकी बेचैनी विवेकानन्द के धर्म में वाणी पा रही थी। ऊपर से देखें तो गुरु शिष्य दो विपरीत छोरों पर थे। विवेकानन्द सुदर्शन, बलिष्ठ युवक थे, तो परमहंस क्षीणकाय। विवेकानन्द अंग्रेजी पढ़े लिखे भद्रलोक थे, तो रामकृष्ण साधारण शिक्षित, दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी। विवेकानन्द संशयवादी, बुद्धिवादी थे तो परमहंस आस्थावान साधक।

रामकृष्ण की साधारणता ही उनकी असाधारणता थी। वे बहुत सहज रूप से विवेकानन्द (जो तब तक नरेन्द्र ही थे) के सीधे सवाल का सीधा जवाब दे सकते थे, 'हाँ, मैंने ईश्वर को देखा है। ऐसे ही जैसे इस वक्त तुम्हें देख रहा हूँ।' बँधे तुले धर्म और महीन तर्क के प्रति उदासीन निजी अनुभव पर आधारित यह आत्मविश्वास रामकृष्ण परमहंस को मध्यकालीन भक्तों की परम्परा से जोड़ता है। रुढ़िवादी शास्त्रधर्म के विरुद्ध जो लोकधर्म भक्तों की वाणी में रचा बसा है, रामकृष्ण परमहंस का व्यक्ति उसी लोकधर्म का मूर्त्त रूप था। साधक के नितांत निजी धरातल पर परमहंस ने हर धर्म—हिन्दू, इस्लाम, ईसाई—को अपनाया था। वे संवादी सबके थे, अंधानुयायी किसी के नहीं।

भक्ति संवेदना की विलक्षणता यही है कि प्रेम को ही आधार माना—भक्त और भगवान का सम्बन्ध हो या मनुष्य और मनुष्य का। रामकृष्ण परमहंस के व्यक्तित्व में इस विलक्षणता ने प्रामाणिक और समकालीन अर्थ पाया तथा विवेकानन्द के कर्म में व्यावहारिक विस्तार। विवेकानन्द जब नारायण को दरिद्र में देखते थे, दरिद्र नारायण की सेवा को ही धर्म का सार कहते थे, तो उनके अपने शब्दों में 'गुरु के उपदेश को जीवन में उतारने की चेष्टा' ही कर रहे थे। यह उपदेश बहुत गहरे अहसास के रूप में मिला था, युवक नरेन्द्र को। जब उन्होंने निर्विकल्प समाधि पाने की साधक सुलभ इच्छा प्रकट की तो गुरु ने उन्हें झिड़क दिया, "धिक्कार है तुम्हें! मैं समझता था, तुम असंख्य आत्माओं के वटवृक्ष बनोगे, तुम केवल अपना स्वार्थ विचार रहे हो।"

परमहंस केवल नरेन्द्र को धिक्कार रहे थे या

उस समूचे बोध को, जिसके लिए धार्मिक होने का अर्थ था सामाजिक यथास्थिति का सहायक होना या फिर केवल अपने मोक्ष की चिन्ता करना। यह धिक्कार नरेन्द्र के लिए इस सच्चाई का साक्षात्कार बना कि मुक्ति अकेले को नहीं मिला करती। वे धर्म का किसी राजनीतिक प्रोजेक्ट के लिए इस्तेमाल नहीं कर रहे थे, वे निःसंदेह धर्म को जी रहे थे, लेकिन उसे नया अर्थ देते हुए। जड़ता के स्थान पर संघर्ष से धर्म को परिभाषित करते हुए। विवेकानन्द उन भाग्यवानों में से नहीं थे, जिन्हें हर सवाल के तैयार जवाब मिल जाते हैं, वे उन अभागों में से भी नहीं थे जो ऐसे रेडीमेड जवाबों को जीवन, धर्म और संस्कृति का सार मान बैठते हैं। उन्होंने न तो धर्म की प्रचलित अवधारणा स्वीकारी, न देश का चालू विचार। उन्होंने सचमुच भारत की खोज की—पूरे दो बरस देश के कोने-कोने में घूम कर उन्होंने भारतीय समाज की ताकत और कमजोरी को परखा। इस परख के ही क्रम में वे स्वयं को भी परख सके। जो लोग समझते हैं कि विवेकानन्द को सारा बोध कन्याकुमारी के तट पर एक ही रात में हासिल हो गया, वे विवेकानन्द की आंतरिक-बाह्य खोज के मर्म को समझ ही नहीं सकते।

१८९१ में पैर में चक्कर लेकर निकले तेजस्वी संन्यासी विवेकानन्द ने सब कुछ त्याग दिया था। सब कुछ त्याग देने का नुकसान भी होता है। वह यह कि व्यक्ति स्वयं को बहुत ऊपर समझने लगता है। 'पवित्र' होने के नाते उसे उन सबसे घृणा का अधिकार प्राप्त हो जाता है, जिन्हें वह स्वयं अपवित्र मानता हो। १८९२ में स्वामी विवेकानन्द खेतड़ी नरेश के अतिथि थे। एक दिन ऐसा हुआ कि एक वेश्या को गाना सुनाने के लिए तलब किया गया। पवित्र संन्यासी क्षुब्ध होकर कमरे से चले गये। दुनियादार लोगों की वासना और तिरस्कार की आदी स्त्री को पवित्र सन्यासी का यह तिरस्कारपूर्ण रवैया बहुत गहरे चुभा और यह चुभन उसने व्यक्त की, सूरदास के पद में 'प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो'—यह विवेकानन्द के पवित्रतावादी अहंकार के विगलन का क्षण था। उसके बाद वे कभी लांछितों, वंचितों और दलितों के प्रति सामाजिक तिरस्कार में हिस्सा नहीं बँटा सके। बल्कि इन लोगों के लिए उनकी करुणा समाज के 'पवित्र' भद्रलोक की कठोरतम आलोचना में व्यक्त हुई।

विवेकानन्द सम्भवतः अपने समय के अकेले विचारक थे, जिन्होंने भारत के उच्च वर्ग और सवर्ण समाज को बतौर सामाजिक समूह के ऐसी लगती हुई बातें कहीं; "शुद्ध आर्य रक्त का दावा करने वालो, दिन रात प्राचीन भारत की महानता के गीत गाने वालो, जन्म से ही स्वयं को पूज्य बताने वालो, भारत के उच्च वर्गों, तुम समझते हो कि तुम जीवित हो। अरे, तुम तो दस हजार साल पुरानी लोथ हो ··· तुम चलती-फिरती लाश हो ··· मायारूपी इस जगत की असली माया तो तुम हो, तुम्हीं हो इस मरुस्थल की मृगतृष्णा ··· तुम हो गुजरे भारत के शव अस्थि पिंजर ··· क्यों नहीं तुम हवा में विलीन हो जाते, क्यों नहीं तुम नए भारत का जन्म होने देते ?"

विवेकानन्द समकालीन राजनीति से दूर ही रहते थे, लेकिन उनका धर्म सामाजिक सत्ता के सवाल से लगातार टकराता था। यही कारण है कि राजनीति से कोई वास्ता न रखने वाले स्वामी विवेकानन्द बार-बार राजनीतिकर्मियों के प्रेरणा स्रोत बने, और यही कारण है कि शोषणकारी समाजसत्ता को बनाए रखने के इच्छुक लोग विवेकानन्द को हथियाने की कोशिश बार-बार करते रहे और अब भी कर रहे हैं ताकि उनकी प्रखर सामाजिक चेतना को छद्म राष्ट्रवाद के हित में इस्तेमाल किया जा सके। इस खतरे का अहसास स्वयं विवेकानन्द को था। इसीलिए उन्होंने कहा था, 'लोग देशभक्ति की बातें करते

हैं। मैं देशभक्त हूँ, देशभक्ति का मेरा अपना आदर्श है।...सबसे पहली बात है, हृदय की भावना। क्या भावना आती है आपके मन में यह देख कर कि ना जाने कितने समय से देवों और ऋषियों के वंशज पशुओं सा जीवन बिता रहे हैं? देश पर छाया अज्ञान का अंधकार क्या आपको सचमुच बेचैन करता है?...यह बेचैनी ही देशभक्ति का पहला कदम है।"

गरीबी, शोषण और अज्ञान के अहसास से बेचैन होना ही देशभक्ति का पहला प्रमाण है— पिछले सौ साल में इस कसौटी की प्रासंगिकता बढ़ी ही है। इस माहौल में जबकि सामाजिक न्याय और देशभक्ति को अलग-अलग किया जा रहा है, जबकि राष्ट्रवाद को आक्रामकता और घृणा का पर्याय बनाया जा रहा है, तब यह कसौटी सच्ची देशभक्ति और छद्म राष्ट्रवाद के बीच सार्थक अन्तर करने के लिए बहुत जरूरी है। इन असली सवालों को राजनीति एजेण्डा से गायब ही कर देने को जो लोग राष्ट्रवाद कहते हैं, और फिर विवेकानन्द के नाम की माला जपते हैं, वे सचमुच धन्य हैं। और धन्य है पाखण्ड कर सकने की उनकी क्षमता।

विवेकानन्द के समय को हम नवजागरण का समय कहते हैं। उनके परिवेश की बुनियादी समस्या यही थी। भारतीय समाज का सामाजिक सांस्कृतिक नवजागरण। कैसे यह महादेश अपनी सांस्कृतिक पहचान फिर से प्राप्त करे? कैसे यह विराट् जनसमुदाय सामाजिक स्पंदन प्राप्त करे? कौन-सी बाधाएँ हैं इस संभावना के रास्ते में। कौन-सा सामाजिक तबका हटा पाएगा इन बाधाओं को? हमारे अपने समय में भी ये सवाल अप्रासंगिक नहीं हो गये हैं, बल्कि पिछले सौ साल के अनुभवों ने कुछ नये सवाल और खड़े कर दिये हैं। विकास का अर्थ और उसकी कसौटी क्या है? भारतीयता की पहचान क्या है? दलितों, स्त्रियों की कोई हिस्सेदारी सामाजिक सत्तातंत्र में होनी चाहिए या नहीं? यदि हाँ तो कैसे? यदि नहीं तो क्यों नहीं? धर्म की मनुष्य के अंतर्जगत तथा सामाजिक जीवन में क्या भूमिका है? हम अपने समाज की किस बात पर गर्व करें और किस के खिलाफ संघर्ष? ये सवाल हमारे वर्तमान को गहरे में मथ रहे हैं। इस मंथन के माहौल में हम विवेकानन्द की बेचैनी से क्या हासिल कर सकते हैं? उनकी भावनाओं तथा विचारों की हमारे वक्त में दिशा कौन सी हो सकती है? परम्परा को समझने के असली सवाल ये ही हैं, और इन्हीं को भुलाने की कोशिश वे लोग करते हैं जो विवेकानन्द जैसी बेचैन मेधा को एक अधूरी तस्वीर में बदलने का अनुष्ठान कर रहे हैं।

'कर्मयोग का आदर्श' नामक प्रसिद्ध व्याख्यान में विवेकानन्द ने कर्मयोग की विलक्षण परिभाषा की, "इस प्रकार कर्मयोग निःस्वार्थ सद्कर्मों द्वारा मुक्ति प्राप्त करने का नैतिक और धार्मिक प्रयत्न है। कर्मयोगी के लिए जरूरी नहीं कि वह किसी सिद्धान्त विशेष का अनुगमन करे, आत्मा आदि के सवालों पर विचार करे। भगवान में विश्वास करना तक कर्मयोगी के लिए अपरिहार्य नहीं है।" यह इस कारण, क्योंकि विवेकानन्द के अनुसार जीवन का मूल प्रतिमान आस्तिकता नहीं, बल्कि नैतिकता है; और नैतिकता का सार है स्वतंत्रता के लिए संघर्ष, शोषण को विशेषाधिकार मनाने वाली व्यवस्था के विनाश के लिए संघर्ष।

विवेकानन्द ने हिन्दू समाज के संदर्भ में इन सारे सवालों पर विचार किया। दासता का स्रोत, उनके अनुसार, कूपमंडूकता और जातिप्रथा में निहित था। वे अपने समाज से सच्चा प्यार करते थे। इसलिए झूठे गर्व के जरिए लोगों को भरमाने की बजाय ताकत और कमजोरी को ठीक-ठीक पहचानने का प्रयत्न करते थे। कूपमंडूक और जातिप्रथा के जरिए समाज की छाती पर

सवार उच्च वर्ग को धिक्कारते हुए विवेकानन्द राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए बने बनाये राष्ट्रवाद की पोटली उठा लेने के लिए नहीं दौड़ पड़ते थे। वे जानते थे कि राष्ट्र दरिद्रनारायण में निवास करता है, और उसे 'जगाना है हलधर किसान के झोपड़े से, मछुआरे की कुटिया से, नीची जातियों के बीच से···राष्ट्र को जगाना है कारखानों और बाजारों से, जंगलों और पहाड़ों के निवासियों के बीच से। इन साधारण लोगों ने हज़ारों बरस अत्याचार सहे हैं, और इसी कारण उन्हें आधी रोटी भी मिल जाए तो ऐसी ऊर्जा उपजेगी उनके बीच, जो सारी दुनियाको हिलाकर रख देगी। भारत के उच्च वर्गों, अतीत के अस्थि पिंजरों, ये जन-साधारण ही हैं आने वाले भारत के भाग्य विधाता।"

इस आने वाले भारत की व्यवस्था की कल्पना विवेकानन्द शूद्रराज के रूप में करते थे। शूद्र शब्द का प्रयोग भी वे केवल जातिवाचक अर्थ में नहीं, शोषित वर्ग के अर्थ में करते थे। उन्होंने उपनिवेशवाद के बारे में कहा था कि "इसके कारण समूचे के समूचे राष्ट्र शूद्र दशा में पहुँच गए हैं।" वे इतिहास को ब्राह्मण राज, क्षत्रिय राज और अपने समकालीन समय को वैश्यकाल के रूप में देखते हुए आने वाले समय में शूद्रराज अर्थात दलितों, शोषितों के राज को अपरिहार्य मानते थे। विवेकानन्द संभवतः पहले भारतीय थे, जिन्होंने स्वयं को सामाजिक आर्थिक अर्थ में 'समाजवादी' कहा, बेशक इस सावधानी के साथ कि 'भले ही समाजवादी आदर्श व्यवस्था न हो, लेकिन न कुछ से तो बेहतर ही है।"

विवेकानन्द का विरोधाभास यह था कि वे जनसाधारण को गैरराजनीतिक रखना चाहते थे, जोकि संभव ही नहीं था। सामाजिक सांस्कृतिक दासता के स्रोत पर चोट ही तो असली राजनीतिक कार्यवाही है, जो यह चोट करना चाहे वह स्वयं राजनीति से कितना ही दूर भागे, राजनीति उसे कहाँ भागने देगी? इस बात को ध्यान में रखते हुए सोचना चाहिए कि इस वर्तमान में विवेकानन्द के विचारों की दिशा क्या हो सकती है?

विवेकानन्द कवि भी थे। अपने अंतर्द्वन्द्वों से वे कई बार कविता में ही टकराते थे। वे बच्चे धार्मिक व्यक्ति थे, सो कई बार उनके मन में नितांत वैयक्तिक साधना की इच्छा बलवती हो उठती थी। दरिद्रनारायण की सेवा के गुरुमंत्र और वैयक्तिक साधना के इस द्वंद्व से विवेकानन्द बार-बार टकराते दीखते हैं। कविताओं में, व्यक्तिगत पलों में, यहाँ तक कि सार्वजनिक लेखों, भाषणों तक में। इस सारे आत्मसंघर्ष के बाद हम उनके जीवन से अंततः वही सच्चाई उभरती देखते हैं, जिसे रोमाँ रोलाँ ने ये शब्द दिये हैं; "हाँ, विवेकानन्द जैसा कवि बार-बार इस नर्क में लौटने को बाध्य है। यह उसकी नियति ही है, जीने का एकमात्र तर्क ही है बार-बार जन्म लेना, इस तर्क की ज्वाला से संघर्ष करना, उससे झुलसते जनों को जान देना, उन्हें बचाने के लिए स्वयं अपनी आहुति दे देना ही उसका धर्म है।" 'धर्म' की इस समझ के कोण से देखें तो विवेकानन्द वहाँ नहीं हैं, जहाँ खोखले आक्रामक 'गर्व' की टकसाल में हिन्दू राष्ट्र का खोटा सिक्का ढाला जा रहा है। बल्कि वे वहाँ हैं, जहाँ उनकी कल्पना के शूद्रराज की संभावनाएँ टटोली जा रही हैं। विवेकानन्द उन लोगों के साथ कैसे हो सकते हैं जो 'इस नर्क की ज्वाला' में और ईंधन डाल रहे हैं? कैसे हो सकते हैं वे उनके साथ जो करोड़ों वंचितों को आपस में लड़ा कर धर्म और देशभक्ति का नाम लेने का दुस्साहस करते हैं? हमारे माहौल में दासता के स्रोत क्या हैं? उसके नए-नए रूप कौन से हैं? मुक्ति की संघर्ष यात्रा किस रास्ते चलेगी? जो ये सवाल सच्चे मन से पूछे, विवेकानन्द की परिभाषा पर खरे उतरने वाले देशभक्त और कर्मयोगी वही हैं। ऐसे लोग विवेकानन्द के प्रतिमा पूजक हों या न हों, उनके विचारक्रम में हमराही अवश्य हैं। वे किसान, मजदूर, दलित, स्त्रियाँ तथा नौजवान हैं जो शोषण मुक्त समाज की स्थापना और मानवीय गरिमा की प्रतिष्ठा के लिए इस नर्क की ज्वाला से जूझ रहे हैं।

विवेक चूड़ामणि

स्वामी वेदान्तानन्द
अनुवादक डॉ० आशीष कुमार बनर्जी

नेदं नेदं कल्पितत्वाक्ष सत्यं
रज्जुदृष्ट व्याल वत्स्वप्न द्रच्च ।
इत्थं दृश्यं साधुयुक्त्या व्यपोह्य
ज्ञेयः पश्चादेशभाव स्तयोर्यः ॥२४६॥

दृश्यमान जो कुछ स्थल या सूक्ष्म है वह सब आत्मा नहीं है कल्पित होने के कारण ये सब सत्य नहीं है, परन्तु रज्जु में दृष्ट सर्प की भाँति, स्वप्न दृष्ट वस्तु समूह की भाँति मिथ्या है। इस प्रकार युक्ति की सहायता से (स्थूल सूक्ष्म) दृश्य समूह के सत्यत्व बोध के सम्यक रूप को अस्वीकार करने के पश्चात जीव एवं ब्रह्म के अभेदत्व को जानना होगा। २४६

तवस्तु तो लक्षणया सउक्ष्यो
तयोरखण्डैक रसत्व सिद्धये ।
नालं जहत्या न तथाऽजहत्या
किन्तुभयार्थात्मिकयैव भाव्यम् ॥२४ ॥

तत् पश्चात् (पूर्व कथित उपाय से विचार द्वारा जीव और ब्रह्म में अभेद भाव अवगत होने के पश्चात) उनके अखण्डत्व एवं अद्वैतत्व प्रमाणित करने हेतु उनका लक्षणा द्वारा सम्यक् रूप से विचार करना होगा। जहती लक्षणा द्वारा दोनों की एकता बोधगम्य न होगी; अजहती लक्षणा द्वारा भी होना सम्भव नहीं; जहती-अजहती-लक्षणा (या भाग लक्षणा) द्वारा आत्म स्वरूप का विचार करना होगा। २४७

'लक्षणा' अर्थात शब्द के वृत्ति विशेष से संबंध है। किसी शब्द के वास्तविक अर्थ को समझने में बाधा होने पर शब्द के जिस वृत्ति द्वारा मुख्यार्थ के साथ सम्बन्ध होने से अन्य अर्थ उपलब्ध होता है, शब्द के उस वृत्ति को लक्षणा कहते हैं। यह लक्षणा वृत्ति तीन प्रकार की होती है। यथा-जहती, अजहती एवं भाग या भाग त्याग लक्षणा।

जहती लक्षणा - जहाँ परस्पर सम्बन्धित दो पदों में एक का मुख्य अर्थ, परित्याग कर गौण अर्थ ग्रहण करना होता है। जैसे, 'गंगायां घोषः'—'गंगा में घोषपल्ली अवस्थित है' कहने पर ग्वालों का गांव गंगा के जल के ऊपर नहीं है वरन गंगातीर में अवस्थित समझना होगा। यहाँ गंगा का मुख्य अर्थ त्याग कर गौण अर्थ ग्रहण किया गया है।

अजहती-लक्षण - इस लक्षण में एक पद के मुख्य अर्थ के साथ कुछ और संयोग करने पर तब वाक्य का अर्थ परिस्फुटित होता है जैसे—'श्वेतः धावति'—'सफेद दौड़ रहा है।' यहाँ श्वेत पद के साथ घोड़ा या और कुछ जोड़ना पड़ेगा। श्वेत रंग कभी नहीं दौड़ता है। यहाँ वक्ता का यह उद्देश्य होता है कि श्वेत वर्ण कोई प्राणी दौड़ रहा है।

जहत्-जहत् लक्षणा या भाग त्याग-लक्षणा या भाग लक्षणा - इस लक्षणा में दोनों पदों के कुछ अंशों के अर्थ का त्याग कर दोनों में एकात्व स्थापित करना पड़ता है। इस लक्षणा का दृष्टान्त अग्रिम श्लोक में वर्णित है—

स देवदत्तोऽयमितीह चैकता विरुद्ध धर्मांशमपास्य कथ्यते ।
यथा तथा तत्त्वमसीति वाक्ये विरुद्ध धर्मानुभयत्र हित्वा ॥२४८॥
संलक्ष्य चिन्मात्रतया सदात्मनोरखण्ड भावः परिचीयते बुधैः ।
एवं महावाक्यशतेन कथ्यते ब्रह्मात्मनोरैक्यय खण्ड-भावः २४९ ॥

'वह देवदत्त यदि व्यक्ति ही है' इस प्रकार के वाक्य में जिस प्रकार देशकालकर्मादि (वर्तमान के सहित) विरुद्ध अंश समूह त्याग कर पूर्व दृष्ट देवदत्त नामक व्यक्ति से वर्तमान दृष्ट व्यक्ति की एकता स्वीकृत होती; उसी प्रकार से 'तत्वमसि' इस वाक्य के 'तत्' एवं 'त्वम' ब्रह्म और जीव-वन दोनों के विरोधी धर्म समूह त्याग कर एवं मात्र चैतन्य अंश को ग्रहण कर विचारशील व्यक्ति गण अद्वय बोध स्वरूप की उपलब्धि करते है। इस प्रकार से वेदक्त अन्य महावाक्य समूहों के द्वारा जीव और ब्रह्म के एकत्व एवं अभेदत्व का वर्णन किया जाता है।

२४८-२४९

मान लिया, देवदत्त नामक एक तरुण को दश वर्ष पूर्व दिल्ली शहर में देखा था। तब वह रुग्ण, कृश एक क्षेत्र था; किसी प्रकार पढ़ाई लिखाई कर रहा था। अब दस वर्ष बाद उसे कलकत्ता में देख रहे हैं एक स्वस्थ, सबल, सुदर्शन; ख्यातिमान युवक जो अध्यापक है। फिर भी मैं देवदत्त को पहचान रहा हूँ क्यों कि, भिन्न स्थान एवं काल में स्थित, पूर्व एवं वर्तमान में दृष्ट दोष गुण के अतिरिक्त उस व्यक्ति को देख रहा हूँ इस कारण। इस प्रकार विचार द्वारा जीव एवं ब्रह्म के परस्र विरोधी अंश समूह को त्याग करने पर ही उनमें एकता सिद्ध हो सकती है।

□

कहानी

सत्कर्म की जीत

—डा० सुरेन्द्रनाथ दीक्षित

हजारों वर्ष पुरानी बात है, तब काशी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसी के राज्य के जनपद के एक कुलीन वंश में बोधिसत्व ने जन्मग्रहण किया। थोड़ी बहुत शिक्षा बचपन में मिली। जब युवा हुए तो उनके संस्कारों ने मन को आंदोलित करना शुरू कर दिया। वे प्रतिदिन नियमित रूप से अपने आवश्यक घरेलू कार्य पूरा कर फिर गाँवों और जनपदों की ओर अकेले निकल पड़ते। साँझ होने पर ही घर लौट पाते। यह विचरण का काम निरंतर चलता रहा।

एक दिन लोगों ने देखा उनके साथ पांच जन और हो गये। वे प्रतिदिन दोपहर को कुदाल और खुर्पी हाथों में ले निकल पड़ते। कहीं ऊँची-नीची सड़क को समतल बना रहे हैं, कहीं गाँव की नालियों का निकास बना रहे हैं, कहीं कुएँ की सफाई कर रहे हैं। देखादेखी और भी युवक मंडली उनके दल में शामिल हो गयी। उनकी संख्या बढ़ गयी तो वे गाँव-गाँव में आहर और तालाब भी बनाने लगे। यात्रियों के लिए धर्मशालायें भी बनाते। अनपढ़ों के लिए छोटी-मोटी पाठशालाएँ भी खोलते और साँझ पड़ते ही अपने-अपने गाँव के घरों में हाथ जोड़ प्रार्थना करते—झूठ न बोलो, आपस में झगड़ो नहीं, मित्रता से सब को देखो। शराब न पीओ। पड़ोसी के सुख-दुख में जीयो। थोड़ा काम दूसरे के हित के लिए भी करो, अपने ही लिए न जीयो।

बोधिसत्व के गाँव के आस-पास के जनपदों का जीवन बड़ा सुख शांतिमय लगता। लोग आपस में न तो झगड़ते, न द्वेष करते। सच्चे मित्र की तरह रहते। शराब भी न पीते सो चारो ओर सुख-शांति थी। पर एक दिक्कत हुई। गाँव का मुखिया कलाल (शराब बेचने वाला) था। अब शराब की दुकान पर कोई न आता, सो शराब की बिक्री खत्म हो ही गयी। आपस में लोग झगड़ते भी नहीं थे, सो गाँव वालों को जुर्माना करने का भी अवसर हाथ से गया। मुखिया पर दोहरी मार

पड़ी। शराब की दूकान का दिवाला निकल गया। न झगड़े हो पाते न जुर्माना ही मिल पाता। मुखिया बड़ा परेशान हुआ। वह क्या करे कि इनकी हरकत बंद हो। उसे एक उपाय सूझा—क्यों न काशीराज ब्रह्मदत्त से बोधिसत्व की झूठी शिकायत चलकर करें कि उसका पत्ता ही साफ हो जाय। सो वह काशी जा कर राजा ब्रह्मदत्त के दरबार में हाजिर हुआ फरियाद लेकर। बोला—राजन्। राज्य में घोर अराजकता है, विद्रोह मचा हुआ है। कोई जमीन की मालगुजारी नहीं देता। बोधिसत्व और उसके साथी प्रजा को मालगुजारी न देने के लिए बहका रहे हैं। जब तक वे गाँव में रहेंगे, मालगुजारी की कानी कौड़ी भी न मिलेगी। राजा बहकावे में आ गया। ताव में आकर बोला—जाओ; हथसार से दस हाथी ले लो, उन्हें श्मसान घाट में गर्दन तक गाड़ कर, कुचलवा कर, जान से मार दो।

बोधिसत्व के साथ उसके दस मित्रों को श्मशान घाट में गर्दन तक गाड़ दिया गया। बोधिसत्व ने कहा—मित्रो। इन हाथियों और पिलवानों को मैत्री दृष्टि से देखो, द्वेष से नहीं। निडर हो कर मौत का सामना करो। ग्यारहो हाथी उन्हें मारने के लिए सूँड़ पटकते चिग्घाड़ते बढ़े तो, पर उनकी आँखों में शांति थी, भय नहीं, मित्रता की करुण आभा थी, वैर का जहर नहीं। पिलवानों ने हाथियो को अंकुश से मारते-मारते घायल कर दिया, पर वे किसी तरह भी आगे न बढ़ सके। निदान, राजा ब्रह्मदत्त दूसरे खूंखार दंतार हाथियों पर उन्हें कुचलने के लिए जुद आया। पर वे हाथी भी उनके निकट गये तो उनकी शांत आँखों और प्रसन्न मुख मुद्रा को देख लौट गये। अंत में हाथी से नीचे उतर ब्रह्मदत्त पैदल ही उनके निकट गया। उन्हें प्रसन्न और शांत देख पूछा—आप राज्य-कर देने के लिए क्यों मना करते हो? तुम्हें मारने के लिए हाथी क्यों नहीं आगे बढ़ते? रहस्य प्रकट करते हुए बोधिसत्व ने कहा—हम प्रजा को झूठ बोलने से मना करते हैं। शराब पीने से मना करते हैं, राज्य का कर देने से नहीं। मित्रता की शिक्षा देते हैं, द्वेष और झगड़े को नहीं। ग्राम निर्माण की, चरित्र निर्माण की, बहुजन हित की प्रेरणा देते है। राजा ने बोधिसत्व के चरण में झुक कर क्षमा माँगी, राजा ने मुखिया को कठोर दण्ड दिया। गाँव वैसा ही सोहावन हो गया। बोधिसत्व ही पाँच सौ से अधिक बार जन्म-ग्रहण कर कालान्तर में पूर्ण बुद्ध बने।

भगवान ही हमारा सब कुछ

अपने सभी कर्त्तव्य, कर्म करो किन्तु मन को भगवान की ओर लगाये रहो। पत्नी, बच्चे, पिता, माता आदि सब के साथ रहो, सब की सेवा करो। उनसे ऐसा व्यवहार करो मानो वे तुम्हारे अत्यन्त प्रिय हों, किन्तु मन ही मन निश्चित जाने रहो कि वे तुम्हारे कोई नहीं हैं और अपना मन सदा भगवान की ओर लगाये रहो।

—भगवान श्रीरामकृष्ण

महाप्रस्थान

— स्वामी विवेकानन्द

(सन् १९०० के १ फरवरी को कैलीफोर्निया के पैसाडीना शेक्सपीयर क्लब में स्वामीजी ने महाभारत के सम्बन्ध में एक भाषण दिया था। उसी भाषण के अंतिम हिस्से से यह कहानी उद्धृत की गयी है।)

कुरुक्षेत्र युद्ध के छत्तीस वर्ष गुजर गये हैं। राजा युधिष्ठिर राज्य पालन का कार्य कर रहे हैं। अचानक एक दिन समाचार मिला कि श्रीकृष्ण ने देह त्याग किया है। हृदय विदारक समाचार ने पांडवों के मन में निस्सीम दुःख भर दिया। श्रीकृष्ण उनके परम मित्र, सखा, परामर्शदाता और गुरु थे।

अर्जुन को उसी समय द्वारिका भेजा गया। द्वारिका से वापस आकर उन्होंने कहा कि वस्तुतः श्रीकृष्ण ने उन्हें छोड़ अमर धाम में प्रस्थान किया है। सिर्फ कृष्ण ही नहीं, यादवों में अधिकांश न रहे।

शोक की काली घटाएँ राजपुरी में आच्छादित हो गई। युधिष्ठिर ने भाइयों को बुलाकर कहा, सुनो, अब हमारे भी प्रयाण का वक्त आ चुका है। आओ, हम भी प्रयाण के लिए तैयार होवें।"

परीक्षित को सिंहासन पर बिठाकर राजा महायात्रा के लिए तैयार हो गये। उनके साथ, भीम, अर्जुन, सहदेव और रानी द्रौपदी भी थी। राजपोशाक त्याग उन्होंने वल्कल वस्त्र धारण किया। पुरवासी नर, नारी आत्मीय स्वजन सभी से विदाई ले उन्होंने अपना महाप्रस्थान आरंभ किया।

प्राचीन काल में राजा भी वृद्धावस्था में संन्यास ग्रहण करते थे। महाप्रस्थान भी एक प्रकार का संन्यास है। जीवन के प्रति जब ममत्व एकदम समाप्त हो जाता है, तभी मनुष्य महाप्रस्थान का अधिकारी होता है। महाप्रस्थान के समय यात्री को ईश्वर की चिन्ता करते करते हिमालय के दुर्गम पथ पर चलना पड़ता है। खाना पीना भी छोड़ देना पड़ता है। इस प्रकार चलते-चलते अपने अन्तिमनिःश्वास के साथ वह अनन्त में विलीन जाता है।

पांडव हिमालय के पथ पर चल रहे थे। पथ में ही उन्होंने देखा कि एक कुत्ता आकर उनके साथ हो लिया है। वे जिधर जाते, कुत्ता भी उधर ही जाता; वह किसी प्रकार उनका साथ न छोड़ता। श्रांत-श्लथ कदमों से वे हिमालय के तुषार-मंडित शिखरों को पदमर्दित करते हुए आगे बढ़ने लगे। किसी के मुख पर स्वर नहीं है। धीरे-धीरे वे आगे बढ़ रहे हैं। युधिष्ठिर सबसे आगे हैं। भीम ने अचानक उनको बुलाकर कहा, "राजा; देखिए, रानी द्रोपदी मिट्टी में गिर गयीं।"

यह सुनकर युधिष्ठिर की आँखें नम हो आयीं। फिर भी उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा। उन्होंने कहा, अभी हम कृष्ण को देखने जा रहे हैं। पीछे देखने का यह समय नहीं। हमें आगे बढ़ना ही होगा।"

कुछ देर बाद भीम ने पुनः कहा, "देखिए, देखिए, सहदेव भी गिर पड़ा। पुनः राजा की आँखे भर आयीं। परन्तु वे रुके नहीं। केवल कहा, "चलो, चलो, हमें आगे जाना है।"

सहदेव के बाद नकुल, उसके बाद अर्जुन एवं अर्जुन के बाद भीम भी गिर पड़े एवं दम तोड़ दिया। युधिष्ठिर तब भी चलते रहे एवं उनके साथ वह कुत्ता।

अतन्तः वे सुमेरु पर्वत पर आ खड़े हुए। स्वर्ग की दुंदुभि बज उठी। देवता गण आकाश से पुष्प वर्षा करने लगे। एक सुन्दर रथ उनके समक्ष आ खड़ा हुआ। रथ से उतरकर आगे आये देवराज इन्द्र। स्वयं युधिष्ठिर को लेने आये थे। इन्द्र ने कहा. "राजन, मनुष्यों के बीच आप सर्वोच्च है। आपको छोड़ कोई कभी सशरीर स्वर्ग न पहुंच सका। आइए, मैं आपही के लिए रथ लेकर आया हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा, "देवराज, आपकी दया ने मुझे मुग्ध कर दिया है। परन्तु रानी और मेरे भाई पथ में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। उन्हुँ छोड़ मैं कैसे स्वर्ग जाऊँ।"

देवराज ने कहा, "वे पहले ही स्वर्ग पहुंच चुके हैं। अब आइए मेरे रथ में।"

युधिष्ठिर ने तब पीछे मुड़कर कहा, "आओ, हम दोनों रथ में बैठें।"

इन्द्र चकित हो गये। उन्होंने कहा, "यह क्या? यह कुत्ता हमारे रथ में बैठेगा? आप इस, अपवित्र प्राणी को यहीं छोड़िए। कुत्ता कहीं स्वर्ग जाता है? आप ज्ञानी हैं, परन्तु यह आपका कैसा विचार है? धार्मिकों में श्रेष्ठ होने के कारण ही आप यहाँ सशरीर आ सके हैं। कुत्ता कैसे स्वर्ग जाएगा?"

युधिष्ठिर ने कहा, "देवराज, आपने जो कहा वह सत्य है। परन्तु यह कुत्ता सारे पथ मेरे साथ आया है। हिममंडित दुर्गम पथों में रानी ने, मेरे भाइयों-सबने मेरा साथ छोड़ दिया, परन्तु इस कुत्ते ने नहीं। मैं इसे छोड़ कैसे जा सकता हूँ?"

"नहीं, नहीं, यह नहीं हो सकता," "गंभीरतापूर्वक इन्द्र ने कहा, ऐसा मनुष्य जो कुत्ते का साथी हो, स्वर्ग नहीं जा सकता।" आपको इस कुत्ते का परित्याग करना ही पड़ेगा। आप क्या इसे अधर्म समझते हैं?"

"जरूर," दृढ़तापूर्वक युधिष्ठिर ने कहा, "मेरे साथ यदि इसे स्वर्ग न जाने दिया गया, तो फिर मैं भी वहाँ जाना पसन्द न करूँगा। प्राण रहने तक मैं आश्रित को नहीं छोड़ सकता। चाहे देवता अनुरोध करें या स्वर्ग का सुख छोड़ना-पड़े।"

देवराज ने कहा, "राजा आप पुण्यात्मा हैं पुण्य के लिए ही आप स्वर्ग के अधिकारी हैं। परन्तु यह हिंसा-परायण प्राणीहंता कुत्ता अपवित्र है। यह कैसे स्वर्ग जा सकता है? एक काम हो सकता है, यदि आप अपने पुण्य के बदले कुत्ते का पाप ग्रहण कर लें एवं आपके स्थान पर इस कुत्ते को स्वर्ग जाने दें तो इसका स्वर्ग जाना संभव हो सकता है। आप राजी हैं?"

—"मैं आनन्द के साथ राजी हूँ। मेरे पुण्यों को ले यह मेरे बदले स्वर्ग जाए। मेरे जाने की आवश्यकता नहीं।" युधिष्ठिर अभी बात खत्म नहीं कर पाये थे कि एक आश्चर्यजनक घटना हुई। कुत्ता वहाँ नहीं था। उसके स्थान पर खड़े हैं धर्मराज यम। यम ने कहा, "राजा, तुम्हारी धर्म परीक्षा लेने हेतु ही मैं कुत्ता बन कर तुम्हारे साथ हो लिया था। तुम इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हो। तुम्हारे समाने धार्मिक पृथ्वी पर विरल है। तुम्हारे जन्म से पृथ्वी धन्य हुई है।"

बैद्यनाथ च्यवनप्राश

अब पोलीजार मे उपलब्ध

स्फूर्ति

यौवन

विकास

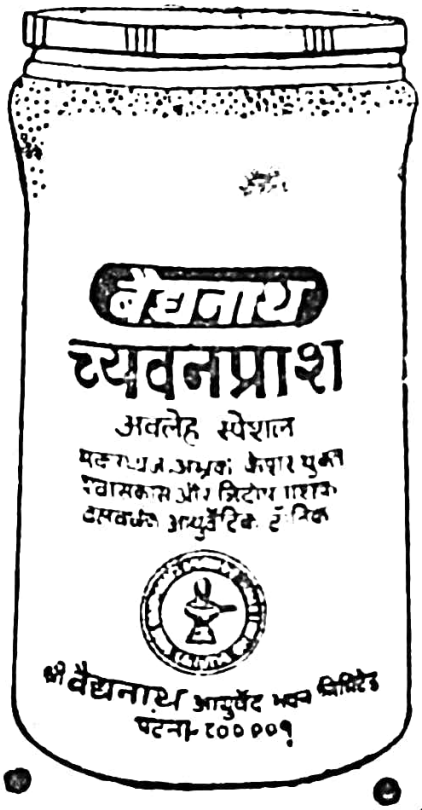

कफ खांसी नाशक

दिमागी ताजगी

बलवर्द्धक

आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक

कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?

प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम - स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।

बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करते

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१

डाक पंजीयन संख्या – बी एच पी – १४–८३

हमारे कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

- श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन खण्डों में)
- श्रीरामकृष्णलीलामृत
- श्रीरामकृष्णवचनामृत (तीन भागों में)
- श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका (दो भागों में)
- भगवान रामकृष्ण : धर्म तथा संघ
- माँ सारदा
- आनन्दधाम की ओर
- भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता
- आचार्य शंकर
- विवेकानन्दजी के संग में
- गीतातत्त्व
- महापुरुषों की जीवनगाथाएँ

स्वामी विवेकानन्दकृत कुछ ग्रन्थ

- ज्ञानयोग
- राजयोग
- भक्तियोग
- प्रेमयोग
- सरल राजयोग
- कर्मयोग
- देववाणी
- हिन्दू धर्म
- आत्मतत्त्व
- धर्मविज्ञान
- धर्मतत्त्व
- धर्मरहस्य
- वेदान्त
- शिकागो वक्तृता
- कवितावली
- मेरे गुरुदेव
- भारतीय व्याख्यान
- चिन्तनीय बातें
- विविध प्रसंग
- भारतीय नारी
- हमारा भारत
- हिन्दू धर्म के पक्ष में
- विवेकानन्दजी के संग में
- पत्रावली
- वर्तमान भारत
- मेरी समरनीति
- मेरा जीवन तथा ध्येय
- शक्तिदायी विचार
- विवेकानन्द–राष्ट्र को आह्वान

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखिए :

रामकृष्ण मठ

धन्तोली, नागपुर– ४४० ०१२

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना – ४ में मुद्रित।